पुस्तक संस्कृति

साहित्य और संस्कृति की द्विमासिकी

nbt.india
एकः सूते सकलम्

वर्ष-6 • अंक-1 • जनवरी-फरवरी 2021 • मूल्य ₹ 40.00

असम विशेषांक

• असम साहित्य सभा • पूर्वोत्तर भारत, हिंदी और महात्मा गांधी • असम की शान डॉ. भूपेन हाजरिका

• अहोम राजवंश में मैदाम प्रथा • ज्योति के आलोक में असमिया संस्कृति • पूर्वोत्तर की अनुपम कला

सीएसआईआर-केंद्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान

(आईएसओ प्रमाणित आरएंडडी प्रयोगशाला)

राजभाषा गृह पत्रिका "सड़क दर्पण"

"राजभाषा हिंदी का प्रचार एवं जन-मानस में वैज्ञानिक चेतना का प्रसार"

- ❖ वैज्ञानिक तथा तकनीकी लेख
- ❖ जनमानस के लिए लोक रूचि के विषय
- ❖ संस्थान की विभिन्न गतिविधियों की जानकारी
- ❖ संस्थान के अनुसंधान और विकास (आरएंडडी) संबंधित जानकारी
- ❖ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विविध पहलु
- ❖ हिंदी में साहित्यिक अभिव्यक्ति
- ❖ समसामयिक जानकारी

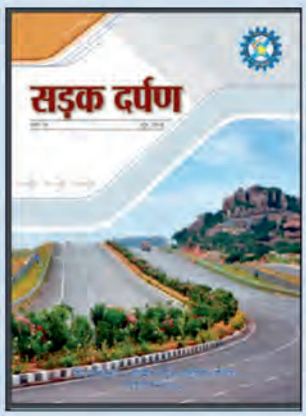

संपर्क -

संपादक, 'सड़क दर्पण'

राजभाषा अनुभाग, सीएसआईआर-केंद्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान

दिल्ली-मथुरा मार्ग, डाकघर सीआरआरआई, नई दिल्ली- 110025

दूरभाष : 26929175, 26831760, 26832325, 26832427/165

ई-पत्रिका का लिंक : **https://www.crridom.gov.in/content/sadak-darpan-hindi-magazine**

प्रधान संपादक
प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

सहायक संपादक
दीपक कुमार गुप्ता

संपादकीय सहयोग
विजय कुमार

विज्ञापन एवं प्रसार
कंचन वांचु शर्मा

उत्पादन
अनुज कुमार भारती, पवन दुबे

रेखाचित्र
अतुल वर्धन

सज्जा/डिजाइन
ऋतुराज शर्मा, समरेश चटर्जी

शब्द संयोजन/कार्यालयीन सहयोग
प्रवीन कुमार, नीलकमल अरोड़ा

सदस्यता शुल्क
व्यक्तियों के लिए
एक प्रति : ₹ 40.00
वार्षिक : ₹ 225.00
(शुल्क भारत के लिए मान्य)

संपादकीय पत्र-व्यवहार
संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
पता : नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया
फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
फोन : 011-26707876
ई-मेल: editorpustaksanskriti@gmail.com

प्रकाशक व मुद्रक अनुज कुमार भारती द्वारा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत) नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 के लिए प्रकाशित और रेक्मो प्रेस प्रा. लि., ओखला, नई दिल्ली से मुद्रित।

संपादक
पंकज चतुर्वेदी
सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

पुस्तक संस्कृति
साहित्य एवं संस्कृति की द्विमासिकी
वर्ष-6; अंक-1; जनवरी-फरवरी, 2021
>> **असम विशेषांक** <<

इस अंक में

संपादकीय — *प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा* 2
चलचित्र — **असम की शान डॉ. भूपेन हाजरिका**—*डॉ. नंदिता दत्त* 4
लेख — **असम साहित्य सभा**—*डॉ. वाणी बरठाकुर 'विभा'* 7
लेख — **असम में असमिया समाज के लिए वेद है : नामघोषा** —*सत्यनारायण मिश्र* 10
आलेख — **हथकरघे पर सपने बुनती असम की नारी**—*सविता जोशी* 14
आलेख — **हिंदी मीडिया में पूर्वोत्तर की ऐसी रही है धमक**—*दीप्ति अंगरीश* 16
लेख — **पूर्वोत्तर की अनुपम कला**—*सुमन 'पुष्पश्री'* 18
संस्मरण — **पूर्वोत्तर भारत, हिंदी और महात्मा गांधी**—*डॉ. अकेलाभाई* 21
आलेख — **श्री मारवाड़ी हिंदी पुस्तकालय : एक विरासत**—*कांता अग्रवाल* 24
लोक संस्कृति — **उत्तर-पूर्व : जहाँ विभिन्न समुदायों की संस्कृतियों का समन्वय नजर आता है**—*दिनकर कुमार* 27
लेख — **हिंदी और असमिया के सेतु छगनलाल जैन**—*किशोर कुमार जैन* 29
आलेख — **अहोम राजवंश में मैदाम प्रथा**—*कविता शइकीया राजखोआ* 32
लोक संस्कृति — **ज्योति के आलोक में असमिया संस्कृति**—*मनोज मोहन* 34
स्मृति — **हिंदी-असमिया भाषा के समन्वयक कमल नारायण देव**—*सौमित्रम्* 37
लेख — **स्वतंत्रता पूर्व असमिया समाज की एक झलक : लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ की आत्मकथा के आधार पर** —*डॉ. कल्पना सरमा कालिता* 40
साक्षात्कार — **साहित्य का क्षेत्र अपरिमित है : माधव कौशिक**—*सपना तिवारी* 43
कहानी — **मुक्ति**—*लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ* 45
आलेख — **पूर्वोत्तर भारतीय समाज, इतिहास, साहित्य, संस्कृति व कला-आधारित सार्थक पुस्तकें**—*डॉ. रमेश तिवारी* 48
आलेख — **सड़क किनारे पुस्तकालय**—*विजय कुमार 'शाश्वत'* 52
पुस्तक समीक्षा 53
साहित्यिक गतिविधियाँ 62
पुस्तकें मिलीं 64

ज्ञान और संस्कृति के प्रकाश पुंज की प्रथम किरण : असम

'आठ भगिनी' राज्यों में से ज्येष्ठ राज्य असम को पूर्वोत्तर राज्यों का प्रवेशद्वार कहा जाता है जिसकी अंतरराष्ट्रीय सीमा दो देशों—भूटान और बांग्लादेश को स्पर्श करती है। सामान्यतः आम जनमानस का विचार यह है कि इस राज्य को असम इसलिए कहते हैं क्योंकि यहाँ का भूभाग समतल नहीं है, यहाँ गिरि-कंदराएँ अधिक हैं। किसी सीमा तक ऐसा माना जा सकता है, पर वास्तव में असम शब्द संस्कृत भाषा के 'असोम' अथवा 'अहोम' से संबंधित है। 'असोम' का अर्थ होता है 'अनुपम' जिसके समान कोई दूसरा नहीं अथवा 'अतुलनीय'। और ऐसा भी—कई मायनों में अनुपम है यह राज्य, यहाँ की प्राकृतिक सुंदरता, सांस्कृतिक धरोहर, लोक संस्कृति, विशाल नद ब्रह्मपुत्र, एक सींगवाला गेंडा, जैव-विविधता इसे विशिष्ट बनाते हैं।

असम का प्राचीन नाम 'प्राग्ज्योतिष' (ज्योतिष ज्ञान के प्रारंभ होने के पूर्व का स्थल) तथा 'कामरूप' है। इस क्षेत्र की संस्कृति किरात थी। पुराणों में प्राग्ज्योतिष और कामरूप का उल्लेख विभिन्न संदर्भों में मिलता है। कालिका पुराण के अनुसार, ब्रह्माजी ने इस क्षेत्र में सर्वप्रथम नक्षत्रों की रचना की थी। इस कारण इसका नाम 'प्राग्ज्योतिष' पड़ा। शिशुपाल जिसका वध श्रीकृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र से किया था, इसी क्षेत्र का राजा था। श्रीकृष्ण के पोते अनिरुद्ध का विवाह भी 'बाण' पुत्री 'उषा' के साथ हुआ था। वे यहीं की थीं। इसी प्रकार अर्जुन के यहाँ आने और यहाँ की राजकुमारी चित्रांगदा के साथ विवाह करने का भी उल्लेख है। इसी क्षेत्र की हिडिंबा का विवाह भीम के साथ हुआ था, साथ ही महाभारत काल के वीर योद्धा बर्बरीक का निवास यहीं था। कालांतर में वे 'श्याम बाबा' नाम से प्रसिद्ध हुए। यह भी उल्लेखनीय है कि युधिष्टिर द्वारा आयोजित राजसूय यज्ञ में यहाँ के राजा भगदत्त सम्मिलित हुए थे।

गुवाहाटी के पास ही वशिष्ट मुनि का आश्रम है। ब्रह्मकुंड (जहाँ परशुराम ने स्नान किया और पाप मुक्त हुए) भी इसी क्षेत्र (अरुणाचल प्रदेश) में स्थित है। बौद्ध धर्म के दोनों संप्रदायों (हीनयान एवं महायान) का इस क्षेत्र में बहुत विस्तार हुआ। रानी मृणावती जिनके मायाजाल में गुरु मछिन्दरनाथ आ गए थे तथा जिन्हें गोरखनाथ ने 'जाग मछिन्दर गोरख आया' की पवित्र अलख से मायाजाल से निकाला, यहीं की थीं। सभी धर्मों के पूजा स्थल यहाँ बहुतायत में हैं। गुरु नानकदेव और तेगबहादुर ने भी असम का विचरण किया था। इसके अलावा गुप्तकाल से अहोमकाल तक के कई स्थापत्य अवशेष यहाँ हैं।

आधुनिक असम की चार विशेषताएँ हैं जो उसकी पहचान बनाती हैं—ब्रह्मपुत्र नद, कामाख्या देवी, शंकरदेव और उनका प्रभाव, असम की लोक संस्कृति (लोक गीत और लोक नृत्य)। ब्रह्मपुत्र (ब्रह्मा का पुत्र) नदी नहीं, नद है। इसका तेज प्रवाह और गर्जना इसका विशाल फैलाव (त्सेला-जोंग नामक स्थान पर इसकी चौड़ाई 3.2 किलोमीटर है), इसे अन्य नदियों से अलग करता है। इसकी अपार जलशक्ति के कारण इसे 'नद' कहा जाता है। पौराणिक मान्यता के अनुसार, ब्रह्मपुत्र नद की पहचान कैलाश-मानसरोवर के साथ ही जाती है। इसका तिब्बती नाम 'सांग-पो' है। हिमालय की पर्वत शृंखलाओं में से कल-कल करती हुई ब्रह्मपुत्र भारत की सीमा में अरुणाचल प्रदेश की पादागिरि (फुटहिल्स) में प्रगट होती है। यहाँ से दक्षिण-पश्चिम की ओर बहती हुई असम में प्रवेश करती है।

ब्रह्मपुत्र असम की जीवन रेखा है। असम के जन, संस्कृति, साहित्य, इतिहास, लोक संस्कृति और अर्थतंत्र का यह आधार है। ब्रह्मपुत्र ने असम को केवल प्राकृतिक सुंदरता ही नहीं दी है, अपितु उसने असम को जीवन दिया है। ब्रह्मपुत्र के किनारे कई साधना पद्धतियाँ पल्लवित हुई हैं, यहाँ किनारे-किनारे कई देवालय, निर्मित हुए हैं। शैव, शाक्त, वैष्णव आदि अनेक संप्रदायों के प्रमुख स्थल भी यहाँ हैं। आज नद पर संचालित कई परियोजनाएँ असम की अर्थव्यवस्था को गति प्रदान करती हैं। ब्रह्मपुत्र असम राज्य के बीच में से बहती है। इसका एक भूभाग 'ब्रह्मपुत्र घाटी' और दूसरा भूभाग (दक्षिणी भूभाग) 'बराक घाटी' के नाम से जाना जाता है। ब्रह्मपुत्र का दूसरा नाम 'लुइत' है जिसे संस्कृत भाषा में 'लोहित्य' कहते हैं। लुइत के कारण असमघाटी के लोग अपने को 'लुइतपरीया असमिया' मानते हैं।

असम में नीलांचल पर्वत पर स्थित कामाख्या शक्तिपीठ ने एक अलग ही पहचान दी है। कामाख्या देवी का मंदिर 51 शक्तिपीठों में सम्मिलित है। यह तंत्र साधना का पूर्वी भारत में प्रमुख केंद्र है। कामाख्या देवी के प्रांगण में आषाढ़ मास में होने वाले मेले को 'अम्बुबाची मेला' कहते हैं। अम्बुबाची का अर्थ होता है 'पानी और प्रकाश'। ऐसी मान्यता है कि अम्बुबाची के समय धरती ऋतुमयी होती है। इन दिनों राज्य के किसान हल, कुदाली या फावड़ा नहीं चलाते और न ही धार्मिक अनुष्ठान,

पूजा-पाठ या कोई धार्मिक कार्य करते हैं। कामाख्या देवी की चारदीवारी के बाहर धूमावती माई का स्थान है। जानकारी के अभाव में प्रायः श्रद्धालु वहाँ नहीं जा पाते अथवा कम ही जाते हैं। कामाख्या देवी शाक्त संप्रदाय का प्रमुख केंद्र है। शाक्त उपासना पद्धति का लौकिक प्रभाव यह हुआ कि यह क्षेत्र जादू-टोना, मंत्र-तंत्र के रूप में प्रसिद्ध हो गया। यहाँ पंचमकार साधना भी प्रचलन में रही है। मंदिर में पशुबलि प्रथा प्राचीन काल से चलन में है। नरबलि का भी उल्लेख कई जगह मिलता है। कामरूप क्षेत्र की 'कैरा तज' (किरात) संस्कृति का जहाँ प्रभाव रहा, वहाँ विष्णु को भी अघोर भैरव माना जाता रहा। यहाँ की मान्यता रही है कि बाल-गोपाल और नरसिंह भी अघोर भैरव ही हैं।

वामाचार, तंत्र-साधना, पंचमकार साधना, अघोर साधना, शवरोत्सव, पशुबलि, नरबलि आदि के कारण कामरूप (असम) के संबंध में यह धारणा बनी कि यह क्षेत्र तंत्र-मंत्र, सम्मोहन विद्या वाला क्षेत्र है। इस धारणा को बदलने में और असम (उस समय का कामरूप) में वैष्णव धर्म को फैलाने में तथा वहाँ के लोगों के जीवन में व्यापक परिवर्तन लाने में 15वीं शताब्दी में शंकरदेव ने भागीरथी प्रयत्न किए। शंकरदेव, रामानंद, कबीर, गुरुनानक देव, नरसी मेहता, तुलसीदास, चैतन्य महाप्रभु के समान ही युग परिवर्तक थे। शंकरदेव ने 'एक देव, एक सेव, एक बिने नाही केव' का मंत्र दिया। शंकरदेव ने 'एकशरण नाम धर्म' अथवा 'एक शरणिया धर्म' का प्रतिपादन किया। वे परम वैष्णव थे, बहु प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने केवल वैष्णव धर्म का ही प्रचार नहीं किया, अपितु बहु विधि रूप से असमिया समाज को शिक्षित और संस्कारित करने का कार्य भी किया। वे वास्तव में असम के संस्कृति पुरुष थे, जैसा उन्हें कहा गया। साँवरमल सांगानेरिया, जिन्होंने शंकरदेव की जीवनी लिखी है, उनके व्यक्तित्व की विशालता बतलाते हुए लिखते हैं, 'वे केवल धर्म प्रतिष्ठापक संत ही नहीं थे और न ही उनकी आध्यात्मिकता केवल धर्म मात्र से ही जुड़ी थी, अपितु वे चिंतक, दार्शनिक, शास्त्र-मर्मज्ञ, समाज-सुधारक, मानवतावादी, कवि, संगीतज्ञ, नाट्यकार, नर्तक, चित्रकार, अभिनेता, गीतकार, गायक-वादक, निर्देशक, मंच-व्यवस्थापक आदि के अतिरिक्त वयन-विशेषज्ञ भी थे। (लोहित के मानसपुत्र : शंकरदेव, पृष्ठ-दस)

शंकरदेव का असम में बहुआयामी योगदान है। उन्होंने असमिया समाज को पुरोहितों के आडंबरपूर्ण व्यवहार से मुक्ति दिलवाई—श्रीकृष्ण भक्ति को सामाजिक संगठन का आधार बनाया, छुआछूत और जातिभेद का समूल उच्छेदन किया, जनजातियों को अपने साथ जोड़ा। वे संस्कृत के विद्वान थे, किंतु उन्होंने ग्रंथों की रचना कामरूपी (असमिया) में की। इस प्रकार उन्होंने लोक भाषा को प्रतिष्ठित किया। भारत को भाषाई आधार पर जोड़ने की दृष्टि से संपर्क भाषा 'ब्रजावली' नाम की नई भाषा बनाई तथा इस भाषा में कई रचनाएँ कीं। वास्तव में आज के असम को समझने के लिए शंकरदेव को समझना आवश्यक है।

असम की लोक संस्कृति में लोक नृत्य और लोक गीतों का महत्वपूर्ण स्थान है। लोक नृत्य असम को अलग ही पहचान दिलाते हैं। वे अनोखी छटा और आनंद पैदा करते हैं। लोक नृत्य और लोक गीतों का संबंध फसलों और लोक देवताओं से है। बिहू को असम का जातीय उत्सव कह सकते हैं। वसंत के आगमन पर बिहू गीतों से पूरा असम गुंजायमान होता है। तीनों माह (वैशाख, कार्तिक तथा माघ) के समय बिहू नृत्य किया जाता है। वैशाख में किया जाने वाला नृत्य 'रडाली बिहू', कार्तिक में किया जाने वाला 'कडाली बिहू' और माघ में किया जाने वाला 'भोगाली बिहू' नृत्य कहलाता है।

आजादी की लड़ाई में असम का योगदान उतना ही अनूठा है जितना यहाँ का भौगोलिक व लोकजीवन। सन् 1826 में यांगदाबू संधि के बाद असम सीधे अंग्रेजों के तहत आ गया था और यहाँ के उन्मुक्त समाज ने तभी से खुद को गुलामी की जंजीरों से आजाद करवाने के प्रयास शुरू कर दिए। विशेष रूप से यहाँ की महिलाओं ने आजादी की लड़ाई में बढ़-चढ़कर भाग लिया और अपने प्राण देश की बलि-बेदी पर न्योछावर कर दिए। सन् 1828 में ही गोमधर कुँअर, कंधुरा डेका फुकन आदि ने जंग का मोर्चा खोल दिया। नगाँव की भोगेश्वरी फुकननी को पहली महिला शहीद कहा जाता है। उन्होंने अपने परिवार को त्यागकर सशस्त्र संघर्ष का रास्ता अपनाया था। सन् 1942 के आंदोलन में जब कनकलता बरुआ शहीद हुईं तो वे महज 17 साल की थीं। भारत छोड़ो आंदोलन में गोपीनाथ बरदोलाई, फखरुद्दीन अली अहमद, ज्योति प्रसाद आगरवाला, हेम बरुआ सहित सैकड़ों नेता जेल गए। आज भी असम के छोटे गाँव तक गांधी, खादी और स्वदेशी की रंग दमकता है।

आधुनिक असम अपनी सांस्कृतिक विरासत और धरोहर को सँजोए हुए एक नया रूप ले रहा है। जहाँ असम प्राकृतिक धरोहर, खनिज तेल, कोयला के साथ-साथ दुनिया में मशहूर चाय बागानों से भरा है वहीं यह प्रदेश उद्योग, पर्यटन, शिक्षा में भी बहुत आगे निकल चुका है। यद्यपि आधुनिक असम में घुसपैठ और जातीय हिंसक घटनाएँ होती रही हैं। तथापि निकट भविष्य में असम राज्य इस पर नियंत्रण करने में सफल होगा तथा प्रगति के मार्ग पर अग्रसरित होगा।

(प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा)
प्रधान संपादक, **पुस्तक संस्कृति**

असम की शान डॉ. भूपेन हाजरिका

डॉ. भूपेन हाजरिका एक ऐसे शख्सियत का नाम है जिन्होंने अपने संगीत से केवल असम को ही नहीं, बल्कि संपूर्ण देश को मोहित किया था जिनके गीतों में जीवन की गहराइयों का जिक्र हुआ है, जिन्होंने 'मानुहे मानुहर बाबे' (मानव, मानव के लिए) गाकर मानवतावाद की एक नई मिशाल कायम की है। डॉ. हाजरिका सही मायने में कलाकार थे, जो अपनी कला के माध्यम से जीवन का रंग बिखेरते थे। बहुमुखी प्रतिभा के धनी होने के नाते संगीत के अतिरिक्त गद्य साहित्य और सिनेमा के क्षेत्र में भी उन्होंने अपने हुनर का अच्छा प्रदर्शन किया है। असमिया के अतिरिक्त हिंदी, बांग्ला आदि भाषा में भी उन्होंने काम किया है। डॉ. हाजरिका उम्दा गायक होने के साथ ही बेहतरीन चलचित्र निर्माता भी रहे हैं। उन्होंने अपने चलचित्रों के माध्यम से समन्वय, मानव-प्रेम, स्वदेश-प्रेम आदि का संदेश दिया है। दर्शकों का हलका मनोरंजन कभी उनका उद्‌देश्य न था। चलचित्र निर्माण के साथ ही उन्होंने अनेक भाषाओं के सिनेमाओं में संगीत-निर्देशन का काम भी किया था। यह वह किस्सा है, जिसने भूपेन हाजरिका को एक नई ऊँचाई प्रदान की जो उनके बहुरंगी आयामों का एक बेहतरीन हिस्सा है।

सन् 1956 में भूपेन हाजरिका ने अपनी पहली फिल्म की थी, जिसका नाम था—'एरा बातर सुर'। महज 30 वर्ष की आयु में चलचित्र का निर्माण करना कोई आसान काम नहीं था। डॉ. हाजरिका ने इस साहसिक कार्य को बड़े सुंदर और सफल रूप में पूरा किया था। उन्होंने सफलतापूर्वक कई फिल्मों का निर्माण किया और दर्शकों ने भी उन्हें पसंद किया। डॉ. हरिचरण दास ने हाजरिका के व्यक्तित्व के प्रबल पक्ष को उभारते हुए कहा है, "उनके लिए सिनेमा केवल मनोरंजन का माध्यम न था, ये था समाज परिवर्तन का माध्यम। उनके गीत थे समाज परिवर्तन का अस्त्र।" (दास, नियमीया वार्ता, 14)।

संगीत के क्षेत्र में डॉ. भूपेन हाजरिका हीरा हैं, परंतु सिनेमा के क्षेत्र में वे एक जौहरी की भूमिका निभाते हुए नजर आते हैं। जिस प्रकार असली हीरे की परख जौहरी को होती है, ठीक वैसे ही हाजरिका को भी पक्के सुर, धुन और अभिनय की परख थी और इसीलिए वे चुनिंदा लोगों से ही काम करवाते थे। अपनी फिल्मों में उन्होंने इस बात पर खास ध्यान दिया था। यहाँ यह बताना उचित होगा कि हर फिल्म को बनाते समय उन्हें आर्थिक अभाव से गुजरना पड़ा था। आइए, उनके द्वारा निर्मित चलचित्रों की तरफ आगे बढ़ते हैं।

एरा बातर सुर (1956)

यह डॉ. हाजरिका की पहली फिल्म थी, जिसे उन्होंने परीक्षामूलक माना। उनके जीवन के

डॉ. नंदिता दत्त

संप्रति : सहायक प्राध्यापिका व विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, नॉर्थ लखिमपुर कॉलेज, असम।

साहित्यिक रुचि : लोकसाहित्य व तुलनात्मक साहित्य।

प्रकाशन : राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं में शोधालेख प्रकाशित, संपादित पुस्तकों में अनूदित कहानियों का प्रकाशन।

सम्मान : साहित्य त्रिवेणी द्वारा प्रदत्त 'सारस्वत सम्मान'

संपर्क : nanditadutta56@rediffmail.com

पूर्वार्ध में बनाई गई इस फिल्म को दर्शकों ने खूब पसंद किया। दर्शकों के साथ स्वयं भूपेन हाजरिका ने भी यह माना है कि इस फिल्म के माध्यम से वे अपनी कहानी सुना रहे थे। यथा, "एरा बातर सुर सिनेमा में मैंने मेरे जीवन की छवि को ही दिखाना चाहा है। जयंत दुवरा ने निशा फुकन नाम की लड़की से शादी का वादा किया था, परंतु दोनों में वह मिलाप न हो सका। इसीलिए गुजरते हुए राहों के धुन को खोजता हुआ जयंत वहाँ से चला आया। जाते समय यह कहकर आया कि कहीं असम की मिट्टी मुझे गलत तो नहीं समझेगी। यह संपूर्ण मेरा आत्मजीवनीमूलक चलचित्र है। मैं आज उसी कहानी को लेकर उपन्यास लिख सकता था, पर नहीं लिखा। मैंने मोशन पिक्चर (Motion picture) कैमरा से किताब लिखना शुरू कर दिया।" (हाजरिका, द्वितीय, 174)। फिल्म 'एरा बातर सुर' में भूपेन हाजरिका ने देश के मशहूर फनकार 'कोकिल कंठी' लता मंगेशकर से गाना गवाया था। 'जोनाकरे राति, असमीरे माटी' शीर्षक गीत के जरिये लता की आवाज पहली बार असम के लिए गूँजी थी। आखिरकार एक पक्के जौहरी ने अनमोल हीरे की तलाश कर ही ली थी।

माहुत बंधु रे (1958)

असम के गोवालपारा जिले की भाषा-संस्कृति को पहली बार फिल्मों में स्थान देने का श्रेय डॉ. भूपेन हाजरिका को जाता है। असम की सु-गायिका स्वर्गीय प्रतिमा पांडे ने 'माहुत बंधु रे' शीर्षक गीत को गाया था। बंगाल और असम—दोनों प्रांत के लोगों ने इस भाषा को अपना मानने से इनकार कर दिया था। भूपेन हाजरिका ने गोवालपारिया भाषा व संस्कृति के आधार पर इस फिल्म को बनाकर एक नई हलचल पैदा कर दी थी। तत्कालीन समय के भारत के जनप्रिय नेता पंडित जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें बुलाकर कहा कि, "यह बड़ी अच्छी फिल्म बनी है।" (हाजरिका, द्वितीय, 186)। इस फिल्म में एक महावत (जिसे गोवालपारिया भाषा में 'माहुत' कहते हैं) की सुख-दुख की गाथा का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत है। बिना किसी स्टारकास्ट के यह अपने जमाने की हिट फिल्मों की श्रेणी में आ गई थी। डॉ. हाजरिका को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई। प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर असम के भिन्न मनोरम जगहों पर इसकी शूटिंग की गई थी। इसके बाद डॉ. हाजरिका रुके नहीं, बल्कि दुगुने उत्साह के साथ उन्होंने काम करना शुरू कर दिया।

शकुंतला (1961)

फिल्म 'शकुंतला' में डॉ. हाजरिका ने संस्कृत के महान कवि कालिदास रचित 'अभिज्ञान शाकुंतलम' को आधार बनाया। असम के गिने-चुने कलाकारों को लेकर यह फिल्म बनी। उस समय यह इतनी चर्चित रही रही कि अत्यधिक बजट में बनने वाली फिल्मों पर यह भारी पड़ गई। उस समय के लोकप्रिय जर्नल 'स्टैट्समैन' में शकुंतला को राष्ट्रीय स्तर के प्रथम पुरस्कार की श्रेणी में रखा था और यह छापा गया था कि, "We have got more Sanskrit charm here of this one lakh rupee production than 'STRI'।" (हाजरिका, द्वितीय, 199)। दर्शकों ने डॉ. हाजरिका की इस नई सोच को अपनाया था और उनकी लगन की तारीफ की थी। प्रथम पर्याय में यद्यपि इस फिल्म को पुरस्कार प्राप्त नहीं हुआ था, परंतु बाद में हाजरिका की कोशिश रंग लाई और सन् 1961 में ही इसे राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

लटिघटि (1966)

यह फिल्म असमिया चलचित्र-जगत के व्यावसायिक दुनिया के आधार पर बनी थी। जहाँ उस क्षेत्र पर करारा व्यंग किया गया, तत्कालीन समय की यह 'सुपर हिट' फिल्म बन गई थी। उस समय 'मेघदूत' सिनेमा हाल के मालिक ने उन्हें भेंट स्वरूप 40,000 रुपये दिए थे। उन दिनों यह रकम बहुत भारी था। बहरहाल, भूपेन हाजरिका यह समझ गए थे कि फिल्म बजट से नहीं, नई सोच से बनती है और वही फिल्म चलती है, जिसमें नई सोच होती है। सन् 1966 में इस फिल्म को राष्ट्रपति पुरस्कार से नवाजा गया था। इसी मंत्र को लेकर वे आने वाले दिनों के लिए कुछ नया सोचने लगे।

प्रतिध्वनि (1964)

उत्तर-पूर्वांचल में स्थित मेघालय में खासी जनजाति का निवास है, वहाँ की लोकगाथा 'माणिक राइटिंग' के आधार पर डॉ. हाजरिका ने 'प्रतिध्वनि' का निर्माण किया था। उन दिनों असम और मेघालय के लोगों के बीच कुछ मन-मुटाव चल रहा था। हाजरिका ने असमिया और खासी जनजाति के लोगों में समन्वय और एकता स्थापित करने के लिए यह फिल्म बनाई थी। इस फिल्म को बनाने के लिए उनके पास पैसे नहीं थे, तब उन्होंने अपने साथियों के साथ मिलकर यह तय किया कि वे लोग गाना गाकर पैसा इकट्ठा करेंगे। पूरे असम का चक्कर लगाकर जो पैसा मिला, उसी से बनी 'प्रतिध्वनि'। सहृदय और समाजप्रेमी हाजरिका के शब्दों में, "ऐसी एक छवि बनाने के पीछे मेरा मुख्य उद्देश्य था असमिया लोगों के प्रति खासियों के मन में जो गलतफहमियाँ हैं, उसे दूर कर पहाड़ और समतल भूमि के बीच समन्वय और एकता स्थापित करना। मेरा व्यक्तिगत मुनाफा इसका उद्देश्य नहीं था। इधर मेरे हाथ में इस फिल्म के लिए पैसे भी नहीं हैं।" (हाजरिका, द्वितीय, 220) अपने गीतों और फिल्मों के माध्यम से डॉ. हाजरिका ने हमेशा समाज में परिवर्तन लाने का प्रयास किया था। लोगों के मन से रूढ़िगत मान्यताएँ दूर कर नए व उन्नत विचारों को भरना उनका उद्देश्य था। मशहूर गायिका आशा भोसले ने इस फिल्म के लिए गाना गाया था।

चिकमिक बिजुली (1969)

डॉ. हाजरिका की अगली पेशकश थी 'चिकमिक बिजुली', जिसे किशोर कुमार, मुकेश और लता मंगेशकर ने अपनी आवाज से

महकाया था। 'चिकमिक बिजुली' में डॉ. हाजरिका ने असम के ड्रग्स माफिया जगत तथा काले धंधे करने वालों के खिलाफ आवाज उठाई थी। उनके शिकार बने उन गरीब और असहाय लोगों के दुख एवं क्षोभ का चित्रण किया था, जिनके आड़ में छिपकर वे गलत काम करते थे। असम सरकार तथा जनसाधारण को सचेत करने के लिए भूपेन हाजरिका ने यह फिल्म बनाई थी, जिसे दर्शकों ने बेहद पसंद किया था।

ज्योतिप्रसाद आगरवाला आरू जयमती (1976)

अपने गुरु तथा सहकर्मी ज्योतिप्रसाद आगरवाला के प्रति श्रद्धा अर्पित करते हुए डॉ. हाजरिका ने यह फिल्म बनाई थी जहाँ असम के प्रथम चलचित्र निर्माता ज्योतिप्रसाद आगरवाला के बारे में बताया गया है। उस समय फिल्म के निर्माणकर्ता तथा सहकर्मियों को किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ा था, उसका भी चित्रण यहाँ मिलता है। जिस गुरु ने हाजरिका की पहली पहचान बनाई थी, उनके लिए डॉ. हाजरिका की तरफ से यह एक छोटा-सा तोहफा था।

इसके अतिरिक्त सन् 1968 में राजश्री प्रोडक्शन में निर्मित 'तकदीर' नामक हिंदी फिल्म को डॉ. हाजरिका ने 'भाग्य' नाम से असमिया में रूपांतर किया था। बहरहाल यह कहना अनुचित न होगा कि अपनी बेहतरीन पेशकश और सोच से डॉ. हाजरिका ने असमिया सिनेमा जगत को एक नया आयाम प्रदान किया था।

चलचित्र-संगीतकार भूपेन हाजरिका

डॉ. भूपेन हाजरिका वाकई एक सच्चे कलाकार थे, संपूर्ण विश्व ने उनकी प्रतिभा को सराहा है। केवल असमिया संगीत जगत में ही नहीं, बल्कि संपूर्ण भारतवर्ष के संगीत जगत में वे छा गए थे। खासकर बंगाली और हिंदी सिनेमा में संगीतकार की भूमिका निभाते हुए नजर आए। उन्होंने दोनों भाषाओं को कई ऐसे बेहतरीन संगीत और सुर दिए हैं, जिसके कारण बंगाली व हिंदी सिनेमा जगत ताउम्र उनके शुक्रगुजार रहेंगे। यह खंड पूर्णतः परिचयात्मक है, यहाँ क्रमशः उन असमिया, बंगाली और हिंदी सिनेमाओं का परिचय प्रस्तुत किया जाएगा, जिनमें भूपेन हाजरिका ने संगीत दिया है। यथा—

असमिया चलचित्र

1. पियली फुकन, 1955; 2. धुमुहा, 1957; 3. केचा सोन, 1959; 4. पुवति निशार सपोन, 1959; 5. मणिराम देवान, 1963; 6. बनरीया, 1973; 7. चामेलि मेमसाब, 1975; 8. खोज, 1975; 9. पलाशर रंग, 1976; 10. बनहंस, 1977; 11. बनजुई, 1978; 12. बृंदावन, 1978; 13. मन प्रजापति, 1979; 14. अकण, 1980; 15. अंगीकार, 1980; 16. अपरूपा, 1982; 17. माँ, 1986; 18. जुगे जुगे संग्राम, 1986; 19. संकल्प, 1986; 20. प्रतिशोध, 1987; 21. मिरि जियोरी, 1990; 22. पानी, 1990; 23. अशांत प्रहर, 1994।

बंगाली चलचित्र

1. असमाप्त, 1957; 2. कड़ी उ कमल, 1957; 3. जीवन तृष्णा, 1957; 4. जोनाकेर आलो, 1957; 5. दुइ बेचारा, 1959; 6. एखाने पिंजर, 1971; 7. दंपत्ती, 1975; 8. सीमना पेरिये, 1975; 9. कालो सिंदूर, 1984।

हिंदी चलचित्र

1. आरोप, 1973; 2. मेरा धरम मेरी माँ, 1975; 3. अपेक्षा, 1984; 4. एक पल, 1986; 5. रुदाली, 1992; 6. साँझ, 1997; 7. दरमियाँ, 1997।

विशेष : बंगाली और हिंदी के अतिरिक्त डॉ. हाजरिका को 'देशदानम' नामक एक मलयालम सिनेमा में भी संगीत का काम करने का सुअवसर प्राप्त हुआ था, जिसमें उनके साथ और आठ संगीतज्ञ भी शामिल थे।

डॉ. भूपेन हाजरिका द्वारा परिचालित इन सिनेमाओं ने श्रोताओं का दिल जीत लिया था, इनमें से सन् 1992 में रिलीज होने वाली 'रुदाली' फिल्म को अंतरराष्ट्रीय पर्याय के ऑस्कर पुरस्कार के लिए मनोनीत किया गया था। अपनी गायकी और हुनर के चलते बंगाली तथा हिंदी सिनेमा जगत की कई जाने-माने हस्तियों के साथ उनका मधुर संबंध रहा है। गायक से लेकर अभिनेता तक सभी उनके लिए तारीफों के फूल बाँधते थे। सुनील दत्त, किशोर कुमार, श्याम बेनेगल, हेमंत मुखर्जी, मृणाल सेन, अशोक कुमार, गुलजार, लता मंगेशकर, मुहम्मद रफी आदि कलाकारों के साथ डॉ. हाजरिका ने काम किया था।

जीवन ने डॉ. हाजरिका को कई आकर्षक प्रलोभन दिए, पर कभी भी उनका इरादा नहीं डगमगाया। अपने मजबूत इरादों के दम पर आखिरकार उन्होंने अपना मुकाम हासिल कर लिया। जो स्वांत-सुखाय तथा लोकमंगल के लिए लिखते हैं, उन्हें कभी अर्थ-प्राप्ति का लोभ नहीं होता है। भूपेन हाजरिका ने स्वयं कहा है, "अंग्रेजी गानों से सुर चुराकर या तो फिर सस्ते गीत गाकर मैं बहुत पैसा कमा सकता था, परंतु मैंने ऐसा नहीं किया और न ही कभी ऐसा करने के बारे में सोचा है। अब भी मैं घर के फर्श पर गद्दा डालकर चैन से सोता हूँ। अभाव की ज्वाला ने कभी भी मेरी निद्रा में बाधा नहीं डाली है।" (हाजरिका, द्वितीय, 168)।

डॉ. हाजरिका के गीतों व चलचित्रों में सदैव असमिया एवं भारतीय समाज व संस्कृति का ही प्रतिफलन रहा है। मानवतावाद का संदेश बाँटने वाले हाजरिका जी ने कभी भी अपने इरादों को बिकने नहीं दिया। तमाम मुश्किलों के सागर को पार करते हुए उन्होंने अपने प्रत्येक सोच को अंजाम दिया था। उनके बुलंद हौसले और जज़्बे को प्रत्येक असमिया ने अपने दिल में सँजोकर रखा है।

असम साहित्य सभा

'असम साहित्य सभा' दुनिया में एक बेजोड़ संस्था। इसे संस्था नाम देना गलत होगा, इसे संपूर्ण असम बोलना ही ठीक होगा। इस संस्था से हर असमवासी जुड़ा है इसीलिए इसे असमवासी की आवाज भी कह सकते हैं। 'असम साहित्य सभा' क्या है, जानने के लिए हमें इतिहास में जाना होगा।

हर जाति के लिए भाषा तथा साहित्य आइने की तरह है। असमिया जाति जैसे प्रतिष्ठित तथा सुलझी हुई है उसी तरह असमिया भाषा और उसका साहित्य भी वैज्ञानिक रूप स्वतंत्र तथा प्रतिष्ठित है। 19वीं सदी के अंत में असमिया साहित्य को विश्व दरबार में स्थान देने के लिए असमिया छात्रों ने जान-प्राण देकर कोशिश की। उस समय असम में दूसरी भाषाएँ हावी होती जा रही थीं। लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा, हेमचंद्र गोस्वामी, तीर्थनाथ शर्मा, बेणुधर राजखोवा, डालिम चन्द्र बरा, कमल चन्द्र शर्मा आदि व्यक्तियों के नेतृत्व में असम में दूसरी भाषाओं को रोकने के लिए 25 अगस्त, 1888 को 'असमिया भाषा उन्नति साधिनी सभा' प्रतिष्ठित की गई। धीरे-धीरे इससे लोग जुड़ते गए और यह पौधा एक बड़ा वृक्ष बन गया। उसी वृक्ष ने सन् 1917 को 'असम साहित्य सभा' का रूप ले लिया। असम साहित्य सभा का उद्देश्य असमिया भाषा, साहित्य और संस्कृति का सर्वांगीण विकास करना और यहाँ की जाति-जनजाति की भाषा-संस्कृति का उन्नयन करना है। असम साहित्य सभा के उद्देश्य इस प्रकार हैं—

डॉ. वाणी बरठाकुर 'विभा'

जन्म : 11 फरवरी, तेजपुर।

संप्रति : शिक्षिका (आर्मी पब्लिक स्कूल, तेजपुर, असम)।

सम्मान : साहित्य सारस्वत, सृजन सम्मान (पूर्वोत्तर हिंदी साहित्य अकादमी), डॉ. महाराज कृष्ण जैन स्मृति सम्मान (राष्ट्रीय हिंदी विकास सम्मेलन), विद्यावास्चपति सम्मान (विक्रमशिला हिंदी विद्यापीठ)।

प्रकाशन : मनर जयेइ जय (असमिया अनुवाद), स्वरचित काव्य संग्रह 'वर्णिका' (हिंदी), आतुर शब्द, पूर्वोत्तर की काव्य यात्रा, वृंदा, ननिकाला सखी संग्रह आदि साझा संग्रह सहित कई पुस्तकें प्रकाशित।

संपर्क : ई-मेल : banibarthakur55@gmail.com

1. अभिधान, व्याकरण और दूसरे ग्रंथ संकलन प्रकाशित करना।
2. प्राचीन साहित्य और लोकसाहित्य के अनुसंधान संग्रह की गवेषणा करना तथा इसे प्रकाशित करना।
3. असमिया साहित्य में जिन ग्रंथों का अभाव है उसकी पूर्ति करना।
4. प्रकाशित ग्रंथों में से उपयुक्त ग्रंथों के ग्रंथकार को पुरस्कार देना और सामर्थ्यहीन साहित्यकार को सहायता प्रदान करना।
5. संगीत, चित्र विद्या और भास्कर्य विद्या के उन्नति हेतु काम करना।
6. सभा का एक मुखपत्र और प्रचार पत्र प्रकाशित करना।
7. भाषा और साहित्य का प्रचार पत्रादि प्रकाशित करना।
8. भाषा-साहित्य-संस्कृति के गवेषणा केंद्र स्थापित करना।
9. साहित्य और संस्कृति संपर्कीय विनियम योजना कार्यकारी करना।
10. असमिया भाषा, साहित्य और संस्कृति के उन्नति और विकास के क्षेत्र में बाधाएँ दूर करना।
11. असमिया भाषा-साहित्य उन्नति के लिए अन्यान्य कार्य करना।
12. असम साहित्य सभा की पत्रिका का संपादन करना।

सन् 1926 से असम साहित्य सभा 'असम साहित्य सभा' नामक एक पत्रिका के माध्यम से असमिया साहित्य की गवेषणाधर्मी, विश्लेषणात्मक प्रबंध की त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित करते आए हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय में इस पत्रिका को बंद करना पड़ा। कुछ साल बंद रहने के बाद सन् 1954 से पुनः नियमित प्रकाशित होने लगी।

असम साहित्य सभा का वर्तमान प्रतीक चिहृन 28 अक्तूबर, 1960 में गृहीत किया गया। इस प्रतीक चिहृन को युगल दास नामक शिल्पी ने अंकित किया था। सन् 1998-99 से रंगीन प्रतीक का प्रारंभ किया। प्रतीक चिहृन में रखे गए दीया की शिखा लाल है। वहाँ एक ध्रुव तारा भी है जिसका रंग सुनहरा। असम साहित्य सभा का स्वागत गीत 'चिर चेनेही मोर भाषा जननी' गीतकार मित्रदेव महन्त और स्वर लिपि स्व. इन्द्रेश्वर शर्मा जी के हैं।

असमिया भाषा-संस्कृति के विकास तथा प्रसार का उद्देश्य रखते हुए असम साहित्य सभा का जन्म सन् 1917 में हुआ। वर्तमान असम और असम से बाहर कई जगहों में हजारों से ज्यादा शाखाएँ हैं। असम साहित्य सभा का मुख्य कार्यालय असम राज्य के जोरहाट जिले में स्थित चन्द्रकांत संधिकै भवन में है। सन् 1917 के दिसंबर महीने में सिवसागर जिले में पहली बार असम साहित्य सभा का अधिवेशन अनुष्ठित किया और इस सभा के प्रथम सभापति पद्मनाथ गोहाईंबरुवा रहे और शरत चन्द्र गोस्वामी प्रतिस्थापक संपादक। सन् 1920 से 1927 तक गोस्वामी जी ही संपादक रहे।

सन् 1917 से लेकर वर्तमान तक के असम साहित्य सभा के सभापति तथा अनुष्ठित होने की जगह कुछ इस प्रकार है–

1. सन् 1917 के सभापति पद्मनाथ गोहाञिबरुवा, सिवसागर में हुआ।
2. सन् 1918 के सभापति चन्द्रधर बरुवा, गोवालपारा में हुआ।
3. सन् 1919 के सभापति कालिराम मेधि, बरपेटा में हुआ।
4. सन् 1920 के सभापति हेमचंद्र गोस्वामी, तेजपुर में हुआ।
5. सन् 1923 के सभापति अमृतभूषण देव अधिकारी, जोरहाट में हुआ।
6. सन् 1924 के अप्रैल में सभापति कनकलाल बरुवा, डिब्रूगढ़ में हुआ।
7. सन् 1924 के दिसंबर में लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा, गुवाहाटी में हुआ।
8. सन् 1925 के रजनीकांत बरदलै, नगाँव में हुआ।
9. सन् 1926 के बेणुधर राजखोवा, धुबरी में हुआ।
10. सन् 1927 के तरुणराम फुकन, गोवालपारा में हुआ।
11. सन् 1929 के कमलाकान्त भट्टाचार्य, जोरहाट में हुआ।
12. सन् 1930 के मफिजुद्दिन अहमद हाजरिका, गोलाघाट में हुआ।
13. सन् 1931 के नगेन्द्र नारायण चौधुरी, सिवसागर में हुआ।
14. सन् 1933 के ज्ञानदाभिराम बरुवा, उत्तर लक्षिमपुर में हुआ।
15. सन् 1934 के आनन्द चन्द्र आगरवाला, मंगलदै में हुआ।
16. सन् 1936 के सभापति रघुनाथ चौधरी, तेजपुर में हुआ।
17. सन् 1937 के सभापति कृष्णकांत संधिकै, गुवाहाटी में हुआ।
18. सन् 1940 के सभापति मईदुल इसलाम बरा, जोरहाट में हुआ।
19. सन् 1944 के सभापति नीलमणि फुकन, सिवसागर में हुआ।
20. सन् 1947 के सभापति नीलमणि फुकन, डिब्रूगढ़ में हुआ।
21. सन् 1950 के सभापति अम्बिकागिरि रायचौधुरी, मार्घेरिटा में हुआ।
22. सन् 1953 के सभापति सूर्यकुमार भूञा, शिलांग में हुआ।
23. सन् 1954 के सभापति नलिनीबाला देवी, जोरहाट में हुआ।
24. सन् 1955 के सभापति यतीन्द्रनाथ दुवारा, गुवाहाटी में हुआ।
25. सन् 1956 के सभापति बेणुधर शर्मा, धुबरी में हुआ।
26. सन् 1958 के सभापति पद्मधर चलिहा, तिनसुकिया में हुआ।
27. सन् 1959 के सभापति अतुल चन्द्र हाजरिका, नगाँव में हुआ।
28. सन् 1960 के सभापति त्रैलोक्यनाथ गोस्वामी, पलाशबारी में हुआ।
29. सन् 1961 के सभापति त्रैलोक्यनाथ गोस्वामी, गोवालपारा में हुआ।
30. सन् 1963 के सभापति रत्नकांत बरकाकती, नाजिरा में हुआ।
31. सन् 1964 के सभापति मित्रदेव महन्त, डिगबै में हुआ।
32. सन् 1965 के सभापति डिम्बेश्वर नेउग, नलबारी में हुआ।
33. सन् 1966 के सभापति विनन्दचन्द्र बरुवा, उत्तर लक्षिमपुर में हुआ।
34. सन् 1967 के सभापति नकुलचन्द्र भूञा, डिब्रूगढ़ में हुआ।
35. सन् 1968 के सभापति ज्ञाननाथ बरा, तेजपुर में हुआ।
36. सन् 1969 के सभापति आनन्द चन्द्र बरुवा, बरपेटा में हुआ।
37. सन् 1970 के सभापति उपेन्द्रचन्द्र लेखारु, धिंग में हुआ था।
38. सन् 1971 के सभापति तीर्थनाथ शर्मा, माकुम में हुआ।
39. सन् 1972 के सभापति हेम बरुवा, धुबरी में हुआ।
40. सन् 1973 के सभापति गिरिधर शर्मा, रंगिया में हुआ।
41. सन् 1974 के सभापति महेश्वर नेउग, मंगलदै में हुआ।
42. सन् 1975 के सभापति सत्येन्द्रनाथ शर्मा, तिताबर में हुआ।
43. सन् 1976 के सभापति यज्ञेश्वर शर्मा, तिहु में हुआ।

44. सन् 1977 के सभापति चौयद आब्दुल मालिक, अभयापुरी में हुआ।
45. सन् 1978 के सभापति प्रसन्न लाल चौधुरी, गोलाघाट में हुआ।
46. सन् 1979 के सभापति अतुल चन्द्र बरुवा, शुवालकुछि में हुआ।
47. सन् 1980 के सभापति यतीन्द्रनाथ गोस्वामी, रहा में हुआ।
48. सन् 1981 के सभापति सीतानाथ ब्रह्म चौधुरी, तिनसुकिया में हुआ।
49. सन् 1982 के सभापति सीतानाथ ब्रह्म चौधुरी, डिफु में हुआ।
50. सन् 1983 के सभापति बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य, बंगाई गाँव में हुआ।
51. सन् 1985 के सभापति योगेश दास, बिहपुरीया में हुआ।
52. सन् 1986 के सभापति बीरेण बरकाकती, कामपुर में हुआ।
53. सन् 1987 के सभापति महेन्द्र बरा, पाठशाला में हुआ।
54. सन् 1988 के सभापति कीर्तिनाथ हाजरिका, हाइलाकान्दि में हुआ।
55. सन् 1989 के सभापति महिम बरा, डुमडुमा में हुआ।
56. सन् 1990 के सभापति नवकान्त बरुवा, विश्वनाथ चारालि में हुआ।
57. सन् 1991 के सभापति निर्मल प्रभा बरदलै, दुधनै में हुआ।
58. सन् 1992 के सभापति लक्ष्यधर चौधुरी, गोरेश्वर में हुआ।
59. सन् 1993 के सभापति भूपेन हाजरिका, सिवसागर में हुआ।
60. सन् 1994 के सभापति लीला गगै, मरिगाँव में हुआ।
61. सन् 1995 के सभापति हितेश डेका, सर्थेबारी में हुआ।
62. सन् 1996 के सभापति लक्ष्मीनन्दन बरा, बोकाखाट में हुआ।
63. सन् 1997 के सभापति नगेन शइकीया, बिलासीपारा में हुआ।
64. सन् 1998 के सभापति नगेन शइकीया, हाउराघाट में हुआ।
65. सन् 1999 के सभापति चन्द्र प्रसाद शइकीया, हाजी में हुआ।
66. सन् 2000 के सभापति चन्द्र प्रसाद शइकीया, जोरहाट में हुआ।
67. सन् 2001 के सभापति होमेन बरगोहाञि, डिब्रूगढ़ में हुआ।
68. सन् 2002 के सभापति होमेन बरगोहाञि, कलगाछिया में हुआ।
69. सन् 2003 के सभापति बीरेन्द्र नाथ दत्त, उत्तर लक्षिमपुर में हुआ।
70. सन् 2004 के सभापति बीरेन्द्र नाथ दत्त, होजाई में हुआ।
71. सन् 2005 के सभापति कनकसेन डेका, सिपाझार में हुआ।
72. सन् 2006 के सभापति कनकसेन डेका, बेलशर में हुआ।
73. सन् 2007 के सभापति कनकसेन डेका, चापर में हुआ।
74. सन् 2009 के सभापति रंग बंग तेरांग, धेमाजी में हुआ।
75. सन् 2010 के सभापति रंग बंग तेरांग, देढ़गाँव में हुआ।
76. सन् 2013 के सभापति ईमरान शाह, बरपेटा रोड में हुआ।
77. सन् 2015 के सभापति ध्रुव ज्योति बरा, कलियाबर में हुआ।
78. सन् 2018 के सभापति परमानन्द राजवंशी, बरडुमचा में हुआ।
79. सन् 2020 के सभापति कुल शइकीया, शुवालकुछि कामरूप में हुआ।

इस संस्था ने शतवार्षिकी पार की। असम की गौरवशाली असमिया जातीय अनुष्ठान असम साहित्य सभा का वार्षिक अधिवेशन 31 जनवरी से 03 फरवरी, 2020 तक नगाँव जिले के रहा के 'जोंगाल बलहु समन्वय क्षेत्र' में बहुत ही भव्य आयोजन के साथ मनाया गया। जातीय जीवन में इस संकटकालीन अवस्था में असमिया जाति, असमिया भाषा के साथ-साथ स्थानीय मातृभाषाओं पर आए हुए संकटों को कैसे दूर किया जा सकता है, उस पर विचार-विमर्श करने असम के कोने-कोने से छात्र, नेता तथा भाषाविद और विभिन्न संगठन शामिल हुए।

इस चार दिवसीय कार्यक्रम में अरुणाचल के मुख्यमंत्री पेमा खांडू, केंद्रीय गृह विभाग के राज्य मंत्री किरण रिजिजू, असम के मुख्यमंत्री, शिक्षामंत्री, कई विभागीय मंत्री, विश्वविद्यालयों के उपाचार्य, शिक्षाविद, भाषाविद, साहित्यकार, इसके साथ उद्दोधक के रूप में नगालैंड के राज्यपाल पद्मनाभ बालकृष्ण आचार्य, मुख्य अतिथि के रूप में साहित्य अकादेमी के सभापति, ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त कन्नड़ साहित्यकार चन्द्रशेखर कारक भी आमंत्रित थे। अधिवेशन के अंतिम दिन 'मातृभाषा और जातीय ऐक्य' शीर्षक पर चर्चा करने के लिए विभिन्न जातीय-जनजातीय नेताओं के साथ-साथ प्रसिद्ध बांग्ला साहित्यकार डॉ. रामकुमार मुखोपाध्याय और हिंदी साहित्यकार अरुण कमल को विशिष्ट वक्ता के रूप में आमंत्रित किया गया था। इसके साथ-साथ इस अधिवेशन में उत्तर-पूर्व के जाने-माने शिल्पी-साहित्यकार और यूनेस्को-असम इकाई के कार्यवाही संचालक अश्विनी शर्मा और कई उच्च पदाधिकारी भी आमंत्रित थे।

असम साहित्य सभा के 2020-2022 साल के लिए नव निर्वाचित सभापति असम पुलिस की सेवानिवृत्त संचालक प्रधान कुलधर शइकीया, उप सभापति मृणाली देवी, प्रधान संपादक यादव शर्मा ने अधिक-से-अधिक वोट प्राप्त किए और पद प्राप्त किए। इसके साथ कार्यकारिणी मंडल और स्वागत समिति भी गठित किया गया है।

हर साल इसी तरह भव्य कार्यक्रम के साथ असम साहित्य सभा अधिवेशन किया जाता है। असम साहित्य सभा न केवल एक सभा अथवा इसका वार्षिक अधिवेशन, न ही एक अधिवेशन के रूप में मनाते हैं, यह असमवासियों के लिए गौरव तथा भाषा-संस्कृति के पुनरीक्षण भी है। असम साहित्य सभा के माध्यम से असमिया भाषा को लगातार ऊपर से और ऊपर तक ले जा रहे हैं।

असम में असमिया समाज के लिए वेद है : नामघोषा

पिछले कई हजार वर्षों से वेद भारतीय समाज में अमिट छाप छोड़ते आ रहे हैं। वर्तमान भारतीय संस्कृति अपने में विभिन्न प्रकार की मान्यताओं और विचारों का समन्वय समेटकर विश्व संस्कृति को समृद्ध कर रही है। तथापि इसे मूल रूप से वेद-विचारों की देन ही माना जाता है। विश्व विख्यात जर्मन विद्वान मैक्समूलर ने वेदों को ही संसार का सबसे पुराना लिखित दस्तावेज माना है।

लेकिन वेदों की भाषा अत्यंत प्राचीन और गूढ़ संस्कृत तथा मानवीय विचार के प्रथम उन्मेष होने के कारण बाद के समाज को उन्हें समझना अत्यंत दुरूह हो गया है। एक हद तक दुसाध्य और दुर्बोध भी।

सत्यनारायण मिश्र

जन्म : 10 दिसंबर, 1955 कर्वी (चित्रकूट)।

शिक्षा : एम.ए. हिंदी।

संप्रति : पत्रकारिता; विभिन्न समाचार पत्रों में रिपोर्टिंग-डेस्क और संपादन संबंधी अन्य कार्यों का सुदीर्घ अनुभव। जनसत्ता, ब्लिट्ज, पीटीआई फीचर, यूनिवार्ता, योजना और एनएफएस इंडिया आदि जल-जमीन-जंगल व सामाजिक सरोकारों से जुड़े मुद्दों पर लेखन।

संपर्क : मोबाइल– 9435142404

ई-मेल : msnsatyanarayanmishra@gmail.com

इसीलिए पुराण काल के बाद संतों-भक्तों-महापुरुषों ने अपनी-अपनी प्रांतीय-क्षेत्रीय भाषाओं में इनके मौलिक एवं श्रेष्ठ तत्व को बनाए रखते हुए साधारण जनता के समझने लायक, किंतु वेद-विचारों के अनुकूल, फिर भी ज्यादा परिपक्व विचारों से युक्त, ग्रंथ-टीकाएँ लिखी हैं जो आम जनजीवन को अधिक आकर्षित करने में सक्षम हुई और लोगों ने इन्हें ज्यादा सहजता से समझा और बहुत से ने आत्मसात भी किया। ये ग्रंथ अपनी-अपनी भाषाओं-बोलियों में कहीं अधिक लोकप्रिय और मार्गदर्शक प्रमाणित हुए हैं। उदाहरण के लिए, अवधी में लिखी गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस', मराठी में रचित संत ज्ञानेश्वर की 'ज्ञानेश्वरी', तमिल में लिखी तिरुवल्लुवर की 'थिरुक्कुरल' और बांग्ला में गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर की रचना 'गीत वितान' आदि।

वेदों की भूमि भारतवर्ष के ईशान कोण में स्थित असम में भी ऐसे कई ग्रंथ हैं, जिन्हें हम असमिया समाज के वेद के रूप में अभिहित कर सकते हैं? जी हाँ, हैं। 15वीं सदी में महान असम भूमि में दो महापुरुषों का अवतरण हुआ था। वे थे—महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव (1449-1568) और उनके प्रिय शिष्य महापुरुष श्री श्री माधवदेव (1489-1596)। उन दोनों ने मिलकर असम में कुसंस्कार, अंधविश्वास, देव-देवी-भूत-प्रेत-पिशाच आदि की पूजा और इनकी तुष्टि के लिए पशुबलि, वामाचार प्रथा, पंच मकार आदि के विरोध में जागरूकता पैदाकर शुद्ध-सत्व, सार्वजनीन, अहिंसक और मानवतावादी-एक-शरण हरि नाम धर्म का प्रचार किया। उस कठिन परिस्थिति में उन महापुरुषों को समाज संस्कार और धर्म प्रचार के लिए अनेक उपायों का अवलंबन करना पड़ा। लोक-संग्रह के लिए गीत-संगीत,

नाटक, गायन-वायन, बड़गीत, चित्रकला देव-वाद्य आदि का प्रणयन करना पड़ा। यही नहीं, उन्हें एकेश्वरवाद को सिद्ध-स्थिर और प्रतिष्ठित करने के लिए एक विशाल साहित्य साम्राज्य को भी सृजित करना पड़ा। बड़गीत-झुमुरा-अंकीया नाटक, टोटय छप्पय आदि संगीत के एक-एक क्रम, एक-एक विधा प्रयोग के तौर पर तैयार करनी पड़ी। ये सब आज भी असम में अत्यंत लोकप्रिय और समादरणीय हैं।

इन दोनों महापुरुषों ने जो भी लिखा वह सब मैथिली मिश्रित ब्रज बोली-भाषा में है, जिसे आज भी जनभाषा में 'ब्रजावली' बोला जाता है। ऐसा इसलिए किया गया कि आगे जाकर भविष्य में केवल एक ही भाषा होकर अखंड भारत की भावना दृढ़ हो सके। आज से पाँच सौ साल पहले एक अखंड भारत के निर्माण की सबसे सबल प्रक्रिया की यह एक शुरुआत थी।

महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव ने तो विशाल समुद्र जैसा साहित्य लिख डाला। उसमें से श्रीमद्भागवत महापुराण का असमिया भाषा में अनुवाद उन्होंने खुद तो किया ही, दस अन्य लोगों को भी इसमें लगाया। भागवत के प्रथम, द्वितीय, षष्ठम्, अष्टम्, नवम् और दशम् स्कंध के पहले और मध्यम खंड, एकादश और द्वादश स्कंधों का अनुवाद उन्होंने स्वयं ही किया था। एकादश स्कंध के कुछ अध्याय अलग से 'अनादि पातन' नाम से पुस्तकाकार हैं। दशम् स्कंध का अनुवाद भी 'दशम्' नाम से अलग पुस्तक के रूप में है।

इसके अलावा भी श्रीमंत शंकरदेव ने समस्त भागवत पुराण का सार निकालकर अत्यंत मधुर भाषा में 'कीर्तन घोषा' नाम से एक महाग्रंथ का प्रणयन किया, जिसको उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति माना जाता है। अर्थात् श्रीमंत शंकरदेव के विशाल साहित्य संभार में कीर्तन-दशम् नामक दो ग्रंथों को ही उनकी सर्वश्रेष्ठ पुस्तक के रूप में स्वीकारा जाता है।

महापुरुष श्री श्री माधवदेव का योगदान

श्री श्री माधवदेव श्रीमंत शंकरदेव से 40 वर्ष छोटे थे। युवावस्था में वे घोर शाक्त थे। वे संस्कृत वांग्मय के प्रकांड पंडित थे। एक बार उनकी भेंट महापुरुष शंकरदेव से हुई तो श्री श्री माधवदेव ने उनका शास्त्रार्थ के लिए आह्वान किया। सुदीर्घ शास्त्र चर्चा के बाद आखिरकार श्री श्री माधवदेव, महापुरुष शंकरदेव के शरणागत हो गए। असमिया साहित्य के महानतम विद्वान लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा ने इस महामिलन को ही मणि-कांचन संयोग की संज्ञा दी थी। इस मणि-कांचन संयोग के पश्चात वृहत्तर असम में नव वैष्णव धर्म अर्थात एक शरण हरिनाम धर्म का जोरदार प्रचार होने लगा।

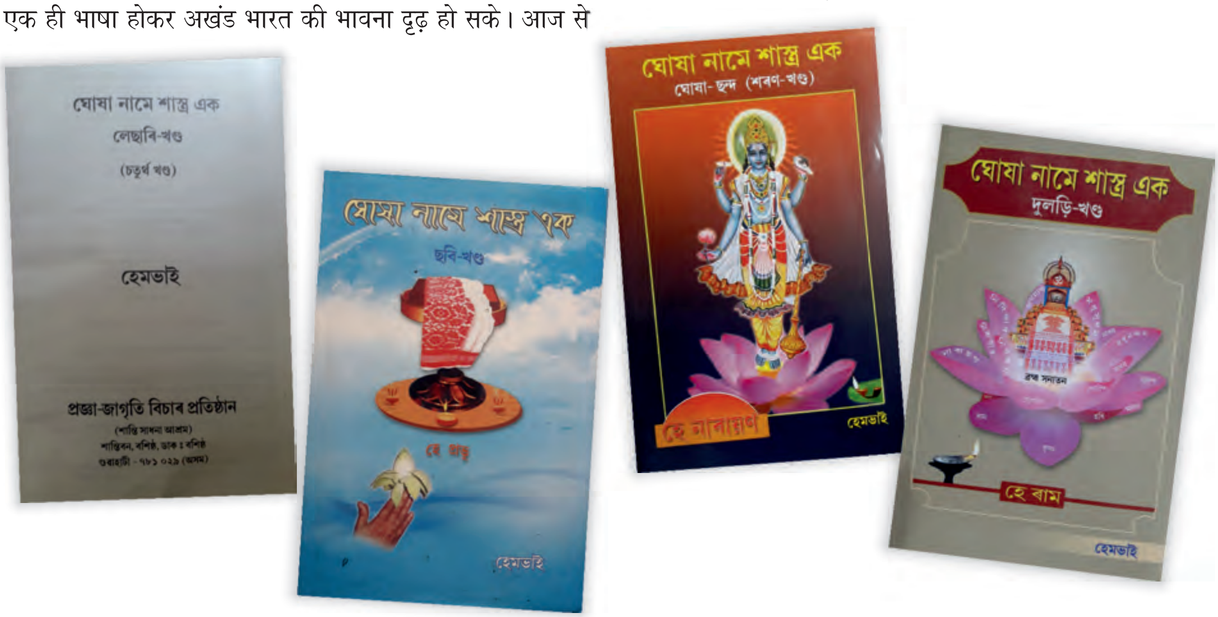

एक बार श्रीमंत शंकरदेव ने उनसे कहा, "हे माधव, मेरे इस संसार से चले जाने के बाद भी वास्तव में मैं जाऊँगा नहीं, अपितु मैं आध्यात्मिक रूप से कीर्तन और दशम् में हमेशा बना रहूँगा। कीर्तन और दशम् मेरे वांग्मय रूप हैं। 'घोषा' नाम से एक शास्त्र तुम भी लिखो। लिखो भी तो ऐसा कि वह एक मीठे बेर जैसा हो। जैसे बेर ऊपर-ऊपर खट्टा-मीठा और कोमल किंतु भीतर स्थित उसका बीज अत्यंत कठोर होता है, वैसे ही गूढ़ तत्वज्ञान से भरा हो। अब तो तुमने बहुत साहित्य लिख ही डाला है, उन सबसे ऊपर तुम्हारा रत्नावली शास्त्र है। अब सर्वश्रेष्ठ शास्त्र बनाओ घोषा को। मैं जैसे कीर्तन-दशम् में हमेशा रहूँगा, वैसे ही तुम भी सदा-सर्वदा घोषा और रत्नावली में जीवित रहोगे।"

गुरु का आदेश मानकर श्री श्री माधवदेव ने महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव के महाप्रयाण के पश्चात घोषा लिखना शुरू किया। उसमें उन्हें कई वर्ष लग गए। उन्होंने उसे नया नाम दिया—नामघोषा। श्रीमंत शकरदेव रचित कीर्तन-घोषा और श्री श्री माधवदेव रचित नामघोषा दोनों मिलकर सही अर्थों में यही मणि-कांचन संयोग है।

जैसे भारतीय विचार-धारा में प्रस्थान त्रयी—उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और गीता तथा चार वेद ऋग्, साम, यजुर और अथर्व हैं, वैसे ही असमिया समाज में कीर्तन, दशम्, घोषा और रत्नावली चतुः प्रस्थान या चतुर्वेद हैं। ये चार ग्रंथ महापुरुषीया (श्रीमंत शंकरदेव प्रवर्तित धर्म को 'महापुरुषीया' कहते हैं। क्योंकि ये एक महापुरुष भगवान कृष्ण को ही एकमात्र आराध्य और भजनीय मानते हैं) धर्म के आधार स्तंभ हैं। अर्थात कीर्तन, दशम्, घोषा और रत्नावली असमिया समाज के चार वेद हैं।

“ गीता के दशम् अध्याय में विभूति योग का वर्णन करते समय भगवान श्रीकृष्ण ने वेदानाम् सामवेदोस्मि की बात कह वेदों में सामवेद को सबसे श्रेष्ठ घोषित किया है। सामवेद का गायन भक्त को भगवान के अति निकट ले जाता है। जैसे वेदों में सामवेद वैसे ही असमिया वेदों में नामघोषा है।

इसकी सबल युक्ति भी दी जाती है। सामवेद है दिव्य संगीत युक्त वेद। इसकी ऋचाओं से देवगण भी परमपुरुष की स्तुति करते हैं। नामघोषा में भी भिन्न-भिन्न प्रकृति एवं उम्र के लोगों के लिए अलग-अलग संगीत का प्राकट्य होता है। ”

गीता के दशम् अध्याय में विभूति योग का वर्णन करते समय भगवान श्रीकृष्ण ने वेदानाम् सामवेदोस्मि की बात कह वेदों में सामवेद को सबसे श्रेष्ठ घोषित किया है। सामवेद का गायन भक्त को भगवान के अति निकट ले जाता है। जैसे वेदों में सामवेद वैसे ही असमिया वेदों में नामघोषा है।

इसकी सबल युक्ति भी दी जाती है। सामवेद है दिव्य संगीत युक्त वेद। इसकी ऋचाओं से देवगण भी परमपुरुष की स्तुति करते हैं। नामघोषा में भी भिन्न-भिन्न प्रकृति एवं उम्र के लोगों के लिए अलग-अलग संगीत का प्राकट्य होता है।

संतश्री हेमभाई ने नामघोषा के छह खंडों की प्रस्तावना में लिखा है—असमिया लोगों के लिए चार वेद हैं : कीर्तन-दशम्-घोषा-रत्नावली। उनमें से घोषा अर्थात नामघोषा है सामवेद। पवित्र नामघोषा है गीतिमय वेद। गायन का वेद है। सभी के लिए हर तरह का गीत-संगीत है यहाँ। नामघोषा में शिशुओं के लिए लोरी गीत हैं तो किशोरों के लिए उत्साह गीत भी हैं। युवाओं के लिए वीर गीत हैं तो युवतियों के लिए वेणु गीत भी। वहीं माताओं के लिए गोपी गीत, सांसारिकों के लिए व्यावहारिक गीत, वृद्धों के लिए धर्म गीत, मुमुर्षु के लिए प्रस्तुति गीत, रोगियों के लिए निदान गीत, निद्रितों के लिए जागरण गीत, भयातुरों के लिए अभय गीत, निष्कांचनों (दीन-हीन वंचित) के लिए हंस गीत, मानव जाति के लिए जीवन संगीत, सृष्टि के लिए आवह संगीत और खुद माधवदेव के लिए राजहंस संगीत है।

जातीय जीवन के लिए जिन-जिन चीजों की जरूरत है वे सारी नामघोषा में उपलब्ध हैं। (घोषा नामे शास्त्र एक की प्रस्तावना से उद्धृत)

गोवाहाटी विश्वविद्यालय की असमिया विभाग की पूर्व विभागाध्यक्ष, डॉ. लीलावती शइकीया बोरा का कहना है कि “माधवदेव का नामघोषा रसमयी भक्ति के गहन आवेग से परिपूरित एक अनूठा धर्मग्रंथ है, जो कि असमिया समाज का प्राण स्पंदन स्वरूप है। नामघोषा के अर्थ को समझें या न समझें, असम के साक्षर-निरक्षर, सभी वैष्णव जन, सभी असमिया नामघोषा के सुर-लय, भाव-भाषा व छंद की चमत्कारिक शक्ति से विमोहित हैं। संक्षेप में कहें तो नामघोषा असम के जातीय जीवन में एक अमर धर्मशास्त्र के रूप में असमिया लोगों के आध्यात्मिक जीवन को प्रकाशित कर रहा है और अनंत काल तक करता रहेगा।”

श्री श्री माधवदेव ने नामघोषा को छह भागों में प्रस्तुत किया था। पहला छवि, दूसरा दुलड़ी, तीसरा पद, चौथा लेछारी, पाँचवाँ घोषा छंद और छठवाँ नाम छंद। इन छहों खंडों के पद्य रूप, छंद और गीत, स्वर-ताल-लय अलग-अलग प्रकार के हैं। इन खंडों के अंदर भी विषय विभाजन के अनुसार 37 विभाग मिलते हैं। उनमें भजन चार बार, नमस्कार चार बार, उपदेश छह बार, निंदा चार बार, प्रार्थना छह बार, अनुनायकी एक बार, महिमा छह बार, आत्म उपदेश तीन बार, आत्म निंदा तीन बार, वस्तु प्रकाश तीन बार, प्रशंसा चार बार, अनुधिता एक बार, नाम तीन बार, परमार्थ सार एक बार, सार निर्णय एक बार, वर्णाश्रम एक बार, हरवार दो बार, नामान्वय दो बार, शरण चार बार, खेद चार बार, नाम महिमा दो बार, निवेदन तीन बार, कलि धर्म निर्णय एक बार, ईश्वर पुरुष लक्षण एक बार, युग धर्म निर्णय एक बार, ईश्वर निर्णय दो बार, महिमा युक्त उपदेश दो बार और कलि धर्म, तात्पर्य, अनुधिता, आश्रम, कीर्तन प्रशंसा, भागवत प्रशंसा, परम पुरुषार्थ, कारुण्य, काकुती एवं नाम छंद का एक-एक बार उद्धरण है। (डॉ. नारायण चंद्र गोस्वामी, कीर्तन घोषा और नामघोषा की तत्वार्थ समीक्षा, पृ.249)

यहाँ एक-एक विभाग में उत्कृष्ट व्यावहारिक ज्ञान, सामाजिक व्यवस्था और गूढ़ आध्यात्मिक तत्व समाहित किए गए हैं। जैसे कि अगर पितृ श्राद्ध करना है तो क्या करना चाहिए। भारी-भरकम कर्मकांड में न जाते हुए मृतक के पुत्र-परिवार सभी को एक हरि शरण में जाने और शुद्ध रीति व सात्विक भावना से हरिनाम गायन-जपन के साथ मृतक पितृ के लिए दही, दूध, घी या मधु जो भी उपलब्ध हो उसी को अर्पित करने की शिक्षा दी गई है। इनमें से कुछ भी उपलब्ध न हो तो नदी का जल अर्पित कर दें, पितृगण तृप्त हो जाएँगे। मूल बात है— हृदय शुद्ध करें, हरि की शरण में जाएँ और शुद्ध भाव से हरिनाम लेवें। कुल मिलाकर हर घोषा में सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक ज्ञान भरा हुआ है।

नामघोषा का तत्वज्ञान

मूलरूप से नामघोषा एक गहन आध्यात्मिक शास्त्र है। ऊपर-ऊपर से कोमल, मधुर, सुललित लगने पर भी गहराई में जाने पर समझ में आने लगता है कि इसकी थाह पाना कितना दुरूह है। इसके लिए एक स्पंदित हृदय, खोजी दृष्टि, साधनायुक्त जीवन, अटूट गुरु भक्ति और ईशकृपा की जरूरत होगी। यह सब गुरु और हरि की शरण लेने के बाद ही संभव हो सकता है।

नामघोषा के प्रारंभ में ही स्पष्ट कह दिया गया है कि हम पहले भक्तों को ही नमस्कार करेंगे। नमस्कार भक्तों को कैसे करेंगे। और तो और जो मुक्ति की भी स्पृहा नहीं रखते हैं, उन्हीं से हम प्रार्थना करेंगे कि वे हमें रसमयी भक्ति प्रदान करें। उसी भक्ति के माध्यम से हम अपने भक्तों के अधीन और समस्त मस्तकों के मणिस्वरूप यदुपति कृष्ण को भजेंगे।

देखता है, लेकिन उत्तमोत्तम दोष को तो देखता ही नहीं है, साथ ही वह अन्य गुणों का विस्तार भी करता है। हमें साधना के माध्यम से उस उत्तमोत्तम तक पहुँचना है। संत विनोबा जी उक्त घोषा को नामघोषा का सार मानते हैं। (घोषा...131)।

नामघोषा में सभी ज्ञानों का सार चार बातों पर रख दिया गया है— वैराग्य के समान भाग्य नहीं है, संतोष जैसा सुख नहीं है, हरि जैसे परित्राण कर्ता नहीं है, संसार जैसा शत्रु नहीं है। (घोषा 35)। आत्मविश्लेषण, आत्मलघुता नामघोषा का मर्म है। ज्ञान-कर्म से भी भक्ति श्रेष्ठ है। (घोषा 200)। नामघोषा में भारत की ही गौरव गाथा गाई गई है। (घोषा 281)। और अनंत कोटि ब्रह्मांड के बारे में कहा गया है। (घोषा 853)। हरि के नाम गुण भागवत का सार है, अतः उसे छोड़ना नहीं, साधु संगत का अनुशरण करो, श्रवण-कीर्तन करो और पाखंड जैसा बर्ताव छोड़ दो। (घोषा 34)।

नामघोषा के आराध्य परम देवता तो देवकीनंदन भगवान कृष्ण ही हैं। किसी भी अन्य देवता के साथ उनकी तुलना हो ही नहीं सकती। शारीरिक दृष्टि से षड् रस हैं। नांदनिक दृष्टि से नौ रस हैं, लेकिन श्री श्री माधवदेव ने इनमें एक रस और जोड़ दिया है, वह है— सेवा रस।

आचार्य विनोबा भावे के अनुसार, सेवा रस असम की ओर से मानव जाति को एक अपूर्व उपहार है (नामघोषा नवनीत)। श्री श्री माधवदेव ने समूची मानव जाति को चार भागों में विभक्त किया है— अधम, मध्यम, उत्तम और उत्तमोत्तम। अधम केवल दोष ही देखता है। मध्यम दोष व गुण दोनों देखता है। उत्तम दोष नहीं केवल गुण ही

असमिया समाज की एक प्राचीन परंपरा है जब किसी कठिन रोग से ग्रस्त रोगी मृत्यु के कगार पर पहुँचा होता है तो उसकी खुद की या परिवार की इच्छा से अंतिम क्षणों में सामूहिक रूप से नामघोषा पढ़ा जाता है। घोषा पढ़ना अर्थात आखिरी मुहूर्त। वैष्णव संप्रदाय में घोषा के द्वारा ही अंतिम संस्कार करते हैं। 1001 घोषा में प्रत्येक घोषा ज्ञान, वैराग्य, भक्ति और ईश्वर प्रतीति का भंडार है। तभी संत विनोबा ने कहा है—नामघोषा का आरंभ अति सुंदर है। मानो गंगा का उद्गम है, हमारे उपकार के लिए समतल में बह रही है। यह ग्रंथ समस्त असम को सत्पथ में चलाएगा। (नामघोषा नवनीत)।

हथकरघे पर सपने बुनती असम की नारी

‘असम की नारी हथकरघे पर सपने बुन सकती है।’ यह वाक्य था राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का। सन् 1946 की 09 जनवरी को जब गांधी जी असम आए थे, सुवालकुची में एरी (अरंडी) और खादी वस्त्रों की प्रदर्शनी लगी थी। वहाँ की महिलाओं द्वारा हथकरघे पर बने वस्त्रों की गुणवत्ता, उन पर बनी असम के परंपरागत डिजाइन देखकर वे आश्चर्यचकित रह गए। वहाँ के बुनकरों ने पाट के वस्त्र भेंट स्वरूप दिए, जिस पर स्वयं गांधी जी की तस्वीर बुनी हुई थी, जो इतनी ही स्पष्ट थी कि उसमें सामने के दो टूटे दाँत भी देखे जा सकते थे। वहाँ के सभी बुनकरों से गांधी जी काफी प्रभावित हुए तथा स्वदेशी परंपरा को सदैव बरकरार रखने की अपील की। विदेशी वस्त्रों को त्यागकर स्वदेशी अपनाने के बारे में बल दिया।

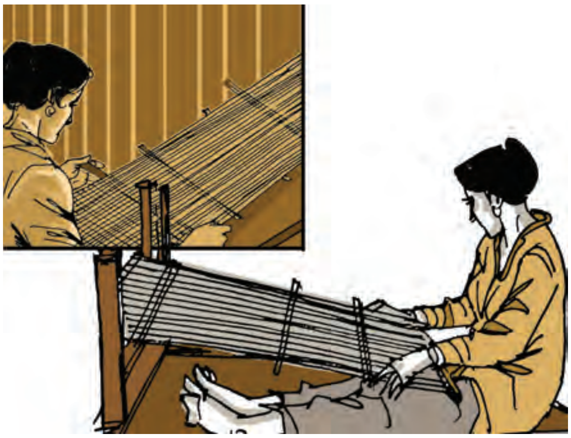

यूँ तो पूर्वोत्तर के सभी राज्यों की जाति-जनजाति की संस्कृति और परंपरा का वाहक है हथकरघा। प्रायः सभी राज्यों में, चाहे वह अरुणाचल प्रदेश हो या नगालैंड, असम हो या मणिपुर समूचे पूर्वोत्तर में ही महिलाएँ हथकरघे पर कपड़े बुनती हैं। वह चाहे घरेलू उपयोग के लिए हो या व्यावसायिक तौर पर। असम में सदिया से धुबड़ी तक हर जिले, हर कस्बे में सभी संप्रदाय की महिलाएँ (ग्रामीण इलाके में) हथकरघे पर वस्त्र बुनती हैं। असम की विभिन्न जाति-जनजाति जैसे अहोम, मिसिंग, बोड़ो, देउरी सभी की अपनी मौलिक वेशभूषा होती है, उसी के अनुरूप उनके वस्त्रों की बुनाई भी विविध पद्धति में अपनी अलग पहचान लिए हुए होती है। उन परिधानों का व्यवहार उत्सवों तथा धार्मिक आयोजनों के अनुरूप किया जाता है।

चूँकि रेशम के कीड़ों की खेती तथा धागों से बुनाई समूचे असम में सदियों से की जाती रही है, परंतु असम का एक विशेष स्थान सुवालकुची, जो कामरूप (ग्रामीण) जिले के अंतर्गत गुवाहाटी से 35 कि.मी. की दूरी पर ब्रह्मपुत्र के उत्तरी तट पर बसा है, उस स्थान को नाम और ख्याति मिली थी अहोम राजाओं के समय से। 11वीं शताब्दी में अहोम राजा ने बरपेटा के तांतीकुची गाँव से तांती अर्थात बुनकरों के कुछ परिवारों को सुवालकुची में लाकर बसाया। तभी से इसका नाम ‘बुनकरों का गाँव’ पड़ा। सुवालकुची हथकरघा कारखानों में बुने सूती, खादी, रेशम (पाट) और मूँगा के परंपरागत परिधान सही मायनों में असम तथा असम के बाहर उत्कृष्ट सामाजिक और नैतिक मूल्यों का वहन करने में सहायक सिद्ध हो रहे हैं। अब सुवालकुची को असम का ‘सिल्क केंद्र’ माना जाता है जहाँ 20,000 से भी अधिक बुनकर और श्रमिक इस काम से जुड़े हुए हैं। यहाँ 13,752 सक्रिय व्यावसायिक तौर पर बुनाई की मशीनें हैं, जिसमें से 54.75% महिलाएँ चलाती हैं। सुवालकुची टाउन में कदम रखने के साथ ही खट-खट, खट-खट की लयबद्ध आवाज कानों में गूँजने लगती है। यही बुनाई का काम पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता आ रहा है। यहाँ काम करने का जज्बा

सविता जोशी

जन्म : 1954, सदिया, असम।

शिक्षा : स्नातक।

संप्रति : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेखन, असमिया से हिंदी और हिंदी से असमिया में कई पुस्तकों और धारावाहिकों का अनुवाद।

सम्मान : असमिया और हिंदी भाषा में लेखन के लिए समन्वय सम्मान।

संपर्क : फोन– 9508442344

ई-मेल : jsavita83@gmail.com

और काम के प्रति निष्ठा, प्रेम से काम में निखार लाता है। हर घर में लकड़ी के तांतशाल (करघे) हैं।

सुवालकुची अपने आप में एक व्यवस्थित कस्बा है। यह क्षेत्र पहले से ही स्थानीय कारीगरों के हाथ में है। उनके कच्चे माल और आवश्यक जरूरतों के लिए बाहरी निर्भरता न के बराबर है। सारे प्रबंध स्थानीय तौर पर होते हैं। सिल्क उत्पाद का सबसे प्राथमिक चरण रेशम के कीड़ों की देखभाल और उनका तापमान नियंत्रण है। यह एक प्रकार की चेन प्रक्रिया है। असम का सिल्क उद्योग पुराने समय से उच्च मानदंड के लिए जाना जाता रहा है। यह उद्योग हथकरघा बुनकरों के लिए मात्र आजीविका का साधन ही नहीं, बल्कि उनकी सामाजिक व सांस्कृतिक विरासत का वो हिस्सा है, जिस पर वे अपने सपने बुनते हैं। यहाँ हर घर में बहू-बेटियाँ, बड़ी-बूढ़ी सभी महिलाओं को बुनाई का एक जुनून, एक नशा-सा है। पुरुष वर्ग भी उनकी मदद करते हैं, रेशम के कीड़ों के पालन-पोषण में, धागे निकालने और उन्हें ड्रम में लपेटने और बोबिन में भरने या हथकरघा लगाने में। हाथ से बुने कपड़े असमिया संस्कृति का अभिन्न अंग है। असम के असमिया गामोछा का विशेष महत्व है। जातीय उत्सव बिहू से लेकर विवाह तक, किसी समारोह से लेकर बड़े मंचों तक, स्नेह और सम्मान के प्रतीक के रूप में यह भेंट स्वरूप प्रदान किया जाता है। नामघरों (शंकरदेव द्वारा प्रचलित सामूहिक प्रार्थना गृह) में तथा तोरण द्वार पर सजावट के लिए भी ये व्यवहार में लाए जाते हैं।

असम में विशुद्ध पाट के कपड़ों की बुनाई भी लकड़ी के हथकरघों पर ही होती है। पाट के वस्त्र विवाह में अनिवार्य हैं। कुछ वर्ष पहले तक पाट के स्वाभाविक मक्खन रंग पर गुना अर्थात जरी के तारों से तरह-तरह की डिजाइन बुनी जाती थी, पर आजकल असम की शिपिनियाँ (बुनने वाली महिलाएँ) विभिन्न रंगों में रेशम के धागों की रंगाई करके उन पर अप्रतिम डिजाइन सुसज्जित करती हैं।

सुवालकुची की महिलाएँ मेखला-चादर (परंपरागत असमिया परिधान) पर खूबसूरत भावों को दर्शाने वाले डिजाइन बुनती हैं। फूल-पत्ती, मोर, हिरण, काजीरंगा के एक सींग वाले गेंडे भी कपड़े पर उकेरती हैं। अहोम राज के समय की किंगखाप डिजाइन आज भी प्रचलित और माँग में है। असम के परंपरागत गहने गामखारु (कलाई पर पहनने वाला ब्रेसलेटनुमा कड़ा), जुनबिड़ि (अर्ध चंद्रमा के आधार का लॉकेट) और भी न जाने कितने डिजाइन में बुनकर अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय देती है। पाट बहुत ही महीन और हलका वस्त्र है। कहा जाता है कि पाट छाँव में ही सूख जाता है, और मुट्ठी में छिप जाता है।

अब हम करेंगे असम के मूँगा सिल्क की बात, जो हलकी सुनहरी रंगत लिए हुए चमकता-सा दुर्लभ रेशम है, जो केवल असम में ही बनता है। मूँगा को Golden Silk, Silk Queen भी कहा जाता है, यह एक प्रकार का Wild Silk है। इसके उत्पादन में समय और मेहनत दोनों ही ज्यादा लगती है। यह काफी महँगा भी होता है। अहोम राजाओं के शासन काल में इसे राजपरिवार के व्यवहार के लिए आरक्षित किया जाता था। सन् 2007 में Geographical indication status और सन् 2014 में GI Logo की ख्याति मिली। असम के जातीय उत्सव बिहू बिना मूँगा परिधान के अधूरा है। नृत्यांगनाएँ मूँगा की मेखला-चादर पहनकर ही बिहू नृत्य करती हैं। असम की संस्कृति का अभिन्न अंग है मूँगा। आजकल मूँगा की साड़ियाँ, चोली, अन्य डिजाइनर कपड़े भी बाजार में उपलब्ध हैं। मूँगा सिल्क वैश्विक स्तर पर असम का नाम रोशन कर रहा है। यह असमिया जातीय जीवन तथा संस्कृति व परंपरा है। राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय बाजार में असम में बुने मूँगा सिल्क के मान और माँग सोच से परे हैं। मूँगा सिल्क इसके लंबे समय तक चलने के लिए भी प्रसिद्ध है।

जरी या एरी (अरंडी) का भी असम में उत्पादन होता है तथा उपयोग में लाए जाने वाले वस्त्र का एक प्रकार है। इसका धागा गर्माहट लिए हुए है। जाड़ों के दिनों में इसकी माँग अधिक रहती है। इसके धागे से हथकरघों पर महिलाओं के लिए रंग-बिरंगे फूलों और बॉर्डर से बुनाई की जाने वाली शॉल, स्टॉल्स काफी आरामदेह होते हैं। पुरुषों के लिए बड़ी शॉल तथा जैकेट बनते हैं।

सुवालकुची के अलावा भी असम के अन्य स्थानों पर इनका उत्पादन, डिजाइनिंग होती है। लखीमपुर, धेमाजी, जोनाई, माजुली आदि स्थानों के हथकरघे पर बने वस्त्रों के डिजाइन की बाजार में काफी माँग है। धेमाजी की बुनाई पद्धति अधिक प्रचलित है।

इसी प्रकार ऊपरी असम के सिवसागर जिले के दिसांगमुख इलाके के लिगिरिबाड़ी में 2017 से समवाय समिति की ओर से हथकरघे की कई मशीनें लगाई गई हैं, जिसमें करीब 300 महिलाओं को कर्म संस्थान मिला है। बाजार में इन दिनों वहाँ से मिसिंग और अन्य डिजाइनों की अच्छी माँग आ रही है। पहने जाने वाले वस्त्रों के अलावा बैग व पर्स भी बुने जाते हैं।

असम की महिलाएँ सदैव ही पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करने की योग्यता रखती हैं, चाहे वह कृषि कार्य हो या हथकरघे पर कपड़े बुनकर बाजार तक पहुँचाकर अर्थोपार्जन। वर्तमान समय में असम में निस्संदेह 12 लाख से भी अधिक हथकरघे और फ्लाई शटल मशीनें हैं। सुवालकुची जैसे स्थान पर हर जाति के लोग सिल्क उत्पादन तथा डिजाइनिंग के काम से जुड़े हुए हैं।

आज बुनकरों के लिए राहत की बात यह भी है कि स्वदेशी उत्पादों पर जोर देने के कारण चीन से आने वाला सिल्क जो दक्षिण भारत से होकर असम पहुँचता था, वह आना बंद हो गया जिससे स्थानीय मूँगा और पाट का प्रयोग बढ़ गया। यह हमारे लिए अत्यंत सुखद अनुभूति है। असम की महिलाएँ यूँ ही आगे बढ़ती रहें और नए आयाम गढ़ती रहें और हथकरघे पर सपने बुनती रहें।

हिंदी मीडिया में पूर्वोत्तर की ऐसी रही है धमक

भारत का पूर्वोत्तर भाग कला-संस्कृति के रूप में बेहद सशक्त रहा है। राजनीतिक रूप से देश की सत्ता का केंद्र रही दिल्ली में बेशक उसकी उतनी पकड़ न हो, लेकिन अपनी भाषाई अस्मिता और परंपरा का पोषक रहा है। हिंदी को पूर्वोत्तर राज्यों तक पहुँचाने के लिए केंद्रीय स्तर पर कई योजनाएँ चलाई गईं, जिसका लाभ भी मिला। यदि हम लोकतंत्र के चौथे स्तंभ कही जाने वाली मीडिया की बात करें, तो खासकर नब्बे के दशक के बाद हिंदी मीडिया में पूर्वोत्तर की धमक बढ़ती गई। पहले प्रिंट मीडिया और उसके बाद इलेक्ट्रॉनिक चैनलों के दौर में कई स्टार पत्रकार आए, जिनकी सोच, समझ और खबरों को पेश करने के तौर-तरीकों का पूरा देश ने लोहा माना।

राजनीतिक और भौगोलिक रूप से देखेंगे तो दिल्ली में रहने वाले व्यक्ति को पूर्वोत्तर काफी दूर नजर आता है। वहीं, जब हम भाषाई और कला-संस्कृति के स्तर पर सोचते हैं, तो हमें 'वसुधैव कुटुंबकम' का सहज ही स्मरण हो आता है। ऐसे में तमाम हिंदी भाषी हमें हिंदुस्तानी ही नजर आते हैं। कहा भी गया है कि "जब दिल मिलते हैं, तो दूरी कहाँ रह पाती है।" हिंदी के साथ भी यही है। हमारे देश में लगभग 171 भाषाएँ एवं 544 बोलियाँ अस्तित्व में हैं। कई विशेषज्ञ कहते हैं कि पहले पूर्वोत्तर की उपेक्षा की गई। 21वीं सदी के साथ जैसे-जैसे तकनीक और संचार के साधन सुगम होते गए, पूर्वोत्तर की बात दिल्ली करने लगी। यह हर स्तर पर लागू होती है।

वर्तमान में पूर्वोत्तर भारत में आठ राज्य शामिल हैं, जिनमें सिक्किम के अतिरिक्त अन्य सात राज्यों को सात बहनों की उपमा प्रदान की गई है। वे सात राज्य अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नगालैंड, त्रिपुरा हैं। प्रत्यक्ष रूप में तो नहीं, पर परोक्ष रूप में देखा जाता है कि जिन भाषाओं की लिपि देवनागरी है, वह भाषा हिंदी न होते हुए भी उस भाषा के जरिए हिंदी भाषा का प्रचार संभव हो सका है। उदाहरण के रूप में, अरुणाचल में मोनपा, मिशि, और अका; असम में मिरि, मिसमि और बोड़ो; नगालैंड में अडागी, सेमा, लोथा, रेग्मा, चाखे तांग फोम तथा नेपाली, सिक्किम में नेपाली लेपचा, भड़पाली, लिम्बू आदि भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि है। देवनागरी लिपि अधिकांश भारतीय लिपियों की जननी रही है।

निर्विवाद तथ्य है कि खड़ी बोली ही आज की हिंदी है। भारत के हिंदी मीडिया की भाषा भी यही है, पत्र-पत्रिकाओं की भी और टेलीविजन और फिल्मों की भी। हिंदी भाषा का निर्माण और आगे बढ़ाने का कार्य मीडिया ने किया है। हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत बंगाल से हुई और इसका श्रेय राजा राममोहन राय को दिया जाता है। राममोहन राय ने कई पत्र शुरू किए जिसमें महत्वपूर्ण है—साल 1816 में प्रकाशित 'बंगाल गजट'। बंगाल गजट भारतीय भाषा का पहला समाचार पत्र है। इस समाचार पत्र के संपादक गंगाधर भट्टाचार्य थे। इसके अलावा राजा राममोहन राय ने मिरातुल, संवाद कौमुदी, बंगाल हेराल्ड पत्र भी निकाले और लोगों में चेतना फैलाई। 30 मई, 1826 को कलकत्ता से पंडित युगल किशोर शुक्ल के संपादन में निकलने वाले 'उदंत मार्तण्ड' को हिंदी का पहला समाचार पत्र माना जाता है।

दीप्ति अंगरीश

शिक्षा : दिल्ली विश्वविद्यालय से परास्नातक, टाइम्स स्कूल ऑफ जर्नलिज्म से पत्रकारिता।

संप्रति : वर्ष 2005 में पत्रकारिता की शुरुआत। विभिन्न प्रतिष्ठित समाचार पत्रों एवं समाचार चैनलों में कार्य का अनुभव।

लेखन : कई वर्षों से देश के विभिन्न समाचार पत्र-पत्रिकाओं में समीक्षा, कहानी लेखन आदि।

संपर्क : ई-मेल : deepti.angrish@gmail.com

असम के वरिष्ठ पत्रकार व संपादक घीसा लाल अग्रवाल को पूर्वोत्तर में हिंदी पत्रकारिता का गुरु माना जाता है। बता दें कि वे जीएल पब्लिकेशंस प्रबंध के निदेशक सह अध्यक्ष रहे हैं। इसके तहत हिंदी अखबार 'पूर्वांचल प्रहरी', असमिया अखबार 'आमार असम', अंग्रेजी दैनिक 'द नॉर्थ ईस्ट टाइम्स' और मेघालय राज्य के लिए एक अलग अंग्रेजी दैनिक 'द मेघालय गार्जियन' का प्रकाशन हो रहा है। पब्लिकेशंस के अध्यक्ष घीसा लाल अग्रवाल ने असमिया भाषा और संस्कृति के विकास में महती योगदान दिया। उनका जन्म बरपेटा जिले में सन् 1940 में हुआ था। उन्होंने हिंदी में विशारद की उपाधि हासिल करने के बाद 1962 में क्लास-1 पीडब्ल्यूडी ठेकेदार के तौर पर अपने करिअर की शुरुआत की थी। असम साहित्य सभा ने 2001 में अग्रवाल को अपनी एक्जीक्यूटिव कमेटी का आजीवन सदस्य चुना था।

समय बीता। 1990 के दशक में भारतीय भाषाओं के अखबारों, हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में अमर उजाला, दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण, प्रभात खबर आदि के नगरों-कस्बों से कई संस्करण निकलने शुरू हुए। जहाँ पहले महानगरों से अखबार छपते थे, भूमंडलीकरण के बाद नई तकनीक, बेहतर सड़क और यातायात के संसाधनों की सुलभता की वजह से छोटे शहरों, कस्बों से भी नगर संस्करण का छपना आसान हो गया। इसी दौड़ में और इससे पहले भी पूर्वोत्तर के राज्यों में हिंदी पत्रकारों ने अलख जगाए रखी।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का दौर आया। जैसे ही टीवी स्क्रीन पर दिबांग नजर आने लगे, पूरे देश को लगा कि पूर्वोत्तर का यह लाल हिंदी पत्रकारिता में नया नाम करेगा। लोगों की उम्मीदों पर आज तक खरे उतरे हैं दिबांग।

आज दिबांग पूर्वोत्तर ही नहीं, पूरे देश के उन युवाओं के रोल मॉडल हैं, जो मीडिया की दुनिया में कदम रखना चाहते हैं। 'सूर्योदय का प्रदेश' कहे जाने अरुणाचल प्रदेश में दिबांग का जन्म हुआ है। बता दें कि वहाँ दिबांग घाटी विश्व प्रसिद्ध है, जो पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करती है। आजतक, एनडीटीवी, एबीपी न्यूज जैसे नामचीन चैनलों पर दिबांग ने अपनी प्रतिबद्धता और क्षमता का लोहा मनवाया है।

हाल के दिनों में अर्णब गोस्वामी को पूरा देश सुन रहा है। उनका संबंध भी पूर्वोत्तर से ही है। अर्णब गोस्वामी का जन्म असम के गुवाहाटी शहर में 09 अक्तूबर, 1973 में हुआ था। वह एक प्रख्यात विधिवेत्ता असमिया परिवार से हैं। उनके दादा रजनीकान्त गोस्वामी एक वकील, कांग्रेस के नेता और एक स्वतंत्रता सेनानी थे। अर्णब गोस्वामी टीवी समाचार प्रस्तोता हैं। वे रिपब्लिक टीवी के प्रबंध संपादक तथा उसके आधे से अधिक अंश (शेयर) के स्वामी हैं।

पूर्वोत्तर की भाषाओं के साहित्य की हिंदी में जबरदस्त उपेक्षा हुई है। इस उपेक्षा के खिलाफ जिन पत्रिकाओं ने पिछले दो-तीन दशकों के दौरान निरंतर रचनात्मक संघर्ष किया, वे हैं—उलुपी, महिप और समन्वय पूर्वोत्तर। वैसे उत्तरकाल, पूर्वांचल प्रहरी, सेंटिनल, प्रातः खबर और दैनिक पूर्वोदय भी यदा-कदा पूर्वोत्तर के साहित्य को हिंदी में अनूदित कर लाते रहे हैं, किंतु सुचिंतित तरीके से हिंदी और पूर्वोत्तर में भाषा सेतुबंधन का काम उलुपी, महिप और दैनिक पूर्वोत्तर आदि ने ही किया है।

रविशंकर रवि ने गुवाहाटी से 1997 में उलूपी का संपादन-प्रकाशन प्रारंभ किया था। इस पत्रिका का नाम पूर्वोत्तर की महाभारतकालीन नगा युवती 'उलुपी' के नाम पर रखा गया। उलुपी ने क्षेत्रीय स्वायत्तता के सवाल पर अपने पति को युद्ध के लिए ललकारा था। बिहार के भागलपुर के कोहड़ा ग्राम के रविशंकर रवि 1986 से नवभारत टाइम्स से सक्रिय पत्रकारिता में आए। वे स्व. शिव प्रकाश अवस्थी और रामलला देवी के प्रथम संतान हैं। उनका जन्म अगस्त 1963 में हुआ। फिलहाल गुवाहाटी और जोरहाट से प्रकाशित दैनिक पूर्वोदय के संपादक हैं। पूर्वोत्तर में पिछले 25 वर्षों से पत्रकारिता और पूर्वोत्तर की हिंदी पत्रकारिता का जाना-पहचाना नाम है। इससे पूर्व नवभारत टाइम्स और आज के लिए झारखंड में सक्रिय रहे। पूर्वोत्तर के साहित्य और संस्कृति को पूरे देश के हिंदी पाठकों तक पहुँचाने के लिए गुवाहाटी से 'उलुपी' नामक पत्रिका का 1997 से संपादन-प्रकाशन किया।

पूर्वोत्तर के बारे में नई दुनिया, हिंदुस्तान, जनसत्ता, आउटलुक, राष्ट्रीय सहारा समय समेत कई राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में नियमित लेखन और जर्मन रेडियो-डच वेले और वाइस ऑफ अमेरिका की हिंदी सेवा के लिए पूर्वोत्तर से संवाद सेवा प्रदान कर रहे हैं।

कई पत्रिकाएँ ऐसे प्रदेशों से प्रकाशित हो रही हैं, जिसमें पूर्वोत्तर राज्यों के लेखक अपने-अपने राज्य में प्रचलित लोक कथाओं, लोक गीतों आदि का हिंदी में अनुवाद कर रहे हैं तथा मौलिक सर्जन भी कर रहे हैं। इसका परिणाम यह है कि वे अपने-अपने क्षेत्र की जनभाषा को देवनागरी लिपि में लिखने के अभ्यस्त हो रहे हैं और उनके साहित्य के हिंदी में अनुवाद होने से उनका साहित्य जिसे एक विशेष क्षेत्र के ही पाठक मिलते थे अब पूरे भारतवर्ष के पाठक पढ़ सकते हैं।

पूर्वोत्तरीय भाषाओं को हिंदी ने न केवल जुबान दी है, अपितु सैकड़ों-लाखों कान भी उनकी मीठी बोली का रसास्वादन करने हेतु उपलब्ध कराए हैं। एक भाषा का साहित्य दूसरी भाषा में अनुवाद करके रसास्वादन करना आसान है। इससे एक-दूसरे की भाषा, कला-संस्कृति, रीति-रिवाज को जानना-समझना सुगम होता है। हिंदी भाषा इस क्षेत्र में पूर्वांचल के लिए अनुवाद की भाषा बनकर महत्वपूर्ण कदम उठा रही है।

पूर्वोत्तर की अनुपम कला

पूर्वोत्तर भारत की संस्कृति और कला अद्वितीय व विविधतापूर्ण है जो भारत के अन्य भागों में मिलना कठिन है। पूर्वोत्तर के सात राज्य न केवल अपने मनभावन परिदृश्यों के लिए प्रसिद्ध हैं, अपितु अपने अनुकरणीय शिल्प के लिए भी जाने जाते हैं। भारत सरकार इस कला को प्रचलित कर इसकी माँग को देश-विदेश में बढ़ाना चाहती है, जिससे कौशल और कुशल भारत का निर्माण हो सके। आजकल विद्यालयों की शिक्षा को व्यावसायिक शिक्षा से जोड़कर, स्वयं के साथ दूसरों के लिए रोजगार के अवसर बढ़ाना, इस उद्देश्य में एक सराहनीय योगदान है। ऑक्टिव उत्सव जैसे प्रयोगों द्वारा भारत सरकार ने इन आठ राज्यों की कला व हस्त शिल्प को पूरे देश से परिचय कराने व इनके व्यापार को बढ़ाने हेतु आरंभ किया था।

सुमन 'पुष्पश्री'

जन्म : 14 अप्रैल, 1977।

शिक्षा : चित्रकला में स्नातकोत्तर।

संप्रति : प्रवक्ता, ललित कला।

प्रकाशन : विभिन्न कविताओं व लेखों का राष्ट्रीय स्तर के पत्र व पत्रिकाओं में प्रकाशन।

संपर्क : मोबाइल– 7982450833

ई-मेल : pushpshri108@gmail.com

हस्त शिल्प कला-बुनाई का काम अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, नगालैंड, मणिपुर और असम की लगभग सभी जनजातियों द्वारा किया जाता है। बाँस व बेंत के उत्पाद यहाँ की पारंपरिक कला है। इस क्षेत्र का मौसम इन कलाओं के लिए पर्याप्त वातावरण उत्पन्न करता है और इनका जीवन भी इसी के इर्द-गिर्द घूमता है। मणिपुर के हथकरघा उद्योग में साड़ी, चादर, स्कार्फ, तकिये के कवर व पर्दे आदि जन-साधारण के बीच लोकप्रिय हैं। इसके साथ ही मणिपुर की कौना कालीन, स्पंजी ईख की चटाईयाँ, तिनकों व मिट्टी से बनी गुड़ियाँ व खिलौने और शीतल पाटी टोकरी कला भी अति शोभनीय है। मणिपुर अपने सोना और सोना चढ़े हुए आभूषणों के लिए प्रसिद्ध है।

अरुणाचल प्रदेश के कालीन में ड्रैगन के डिजाइन होते हैं, यह वहाँ की महिलाओं

की आजीविका का मुख्य साधन है। यहाँ विभिन्न प्रकार के अनोखे डिजाइनों की टोपियाँ, टोकरियाँ तथा तराजू बनाए जाते हैं जो कि बेंत कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। असम की हतिमा मृण्मूर्ति कला, मुग

"नगालैंड की बरतन कला, कुकी शॉल, आभूषण, खिलौने, टोपी आदि शिल्प कला पूरे देश में अनोखी है। इनमें कला की गहनता, विविधता और कलाकारों की विशेषज्ञता परिलक्षित होती है। नागा लोग शैल, मोतियों, पक्षियों के पंखों व फूलों का प्रयोग कर विभिन्न उत्पाद बनाते हैं। बाँस शिल्प द्वारा अनेक प्रकार की उपयोगी वस्तुएँ जैसे फर्नीचर, टोकरी, आभूषण, बोतलें, लोहे से बनी नाव, पारंपरिक बंदूकें, हाथी दाँत से बनी वस्तुएँ व अनेक प्रकार के सामान से बनी सजावट की वस्तुएँ, मिट्टी के बरतन बनाते हैं। नगालैंड में वस्त्र कला अधिक प्रसिद्ध है जिसमें आव, सीयांग, रोंगास शॉल, संगताम, येना, फोम, नगा, रेगमा तथा कोन्यक आदि वस्त्र स्त्री व पुरुषों द्वारा पहने जाते हैं। इनमें विभिन्न प्रकार के ज्यामितीय आकार के डिजाइन व आमतौर पर नगा कहानियों को दर्शाकर उसकी सुंदरता को दुगुना कर देते हैं।"

मेखला वस्त्र कला, मंजुली काष्ठ मुखौटे, विभिन्न अवसरों पर नाटकों में तथा रामलीला आदि के मंचन में प्रयोग किए जाते हैं। असम में बेहतरीन गुणवत्ता वाले रेशम का उत्पादन किया जाता है। केन शिल्प में सजावट की वस्तुओं के साथ टोकरी, फर्नीचर; सिल्क की बुनाई, काष्ठ करविंग के शिल्प; काँसा धातु शिल्प हथकरघा बुनाई में एडी, मूँगा तथा शहतूत के रेशम की संस्कृति शामिल है।

नगालैंड की बरतन कला, कुकी शॉल, आभूषण, खिलौने, टोपी आदि शिल्प कला पूरे देश में अनोखी है। इनमें कला की गहनता, विविधता और कलाकारों की विशेषज्ञता परिलक्षित होती है। नागा लोग शैल, मोतियों, पक्षियों के पंखों व फूलों का प्रयोग कर विभिन्न उत्पाद बनाते हैं। बाँस शिल्प द्वारा अनेक प्रकार की उपयोगी वस्तुएँ जैसे फर्नीचर, टोकरी, आभूषण, बोतलें, लोहे से बनी नाव, पारंपरिक बंदूकें, हाथी दाँत से बनी वस्तुएँ व अनेक प्रकार के सामान से बनी सजावट की वस्तुएँ, मिट्टी के बरतन बनाते हैं। नगालैंड में वस्त्र कला अधिक प्रसिद्ध है जिसमें आव, सीयांग, रोंगास शॉल, संगताम, येना, फोम, नगा, रेगमा तथा कोन्यक आदि वस्त्र स्त्री व पुरुषों द्वारा पहने जाते हैं। इनमें विभिन्न प्रकार के ज्यामितीय आकार के डिजाइन व आमतौर पर नगा कहानियों को दर्शाकर उसकी सुंदरता को दुगुना कर देते हैं। नगा शॉल को अंगामी नगा के रूप में भी जाना जाता है और वह चमकीले रंगों और पशुओं की डिजाइन से जुड़ी कसीदाकारी के लिए प्रसिद्ध है।

हथकरघा त्रिपुरा राज्य का सबसे महत्वपूर्ण शिल्प है। विभिन्न रंगों से बुनी हुई कढ़ाई की उर्ध्वाकार व क्षैतिज पट्टियाँ इसकी मुख्य विशेषता हैं। इसके बाद बेंत व बाँस शिल्प आता है। टेबल मैट, लैंप स्टैंड, शीतल पाटी, काष्ठ पर नक्काशी, चाँदी के आभूषण तथा पीतल व काँसे से बनी वस्तुएँ बनाई जाती हैं। मिजोरम अपनी बुनाई, बाँस व बेंत शिल्प, पाइप, आभूषण और संगीत वाद्य यंत्रों के लिए प्रसिद्ध है। काष्ठ नक्काशी में हाथी व बाघ के आकारों में कुशलता देखते ही बनती है। यहाँ पारंपरिक लौयन करघे पर वस्त्र बुने जाते हैं। बाघ व हाथी दाँत से बने दुर्लभ आभूषण पहने जाते हैं। मेघालय की गारो पहाड़ियों में वस्त्रों की बुनाई और काष्ठ पर नक्काशी का काम किया जाता है। अन्नानास के रेशों से बना शिल्प अद्वितीय है। मेघालय की उच्च गुणवत्ता वाली एडी रेशम की बुनाई, कालीन की बुनाई सुंदर रंग योजनाओं के लिए प्रसिद्ध है। इनके शेरुदुपकन शॉल, अलप्तनी जैकेट, स्कार्फ, थैले, वांगु बैग, आभूषण, संगीत वाद्य यंत्र आदि उत्पादन बेजोड़ हैं।

तंगका चित्र कला

असम व पश्चिमी अरुणाचल प्रदेश के बौद्ध बहुल क्षेत्र तवांग, कामेंग, सियांग में प्रचलित एक सूती व सिल्क पर की जाने वाली चित्रकला है। भारत में तंगका का शाब्दिक अनुवाद है—लिखित संदेश, जिसमें पवित्र बौद्ध मंत्र आदि लिखे होते हैं, जिन्हें तोरण की तरह घर व मठों के बाहर व वाहनों में भी लगाया जाता है। ये पाँच रंग के होते हैं। इसकी छोटी-छोटी झंडियों को रस्सी द्वारा तोरण की तरह प्रयोग किया जाता

है। लाल, नीला, पीला, हरा व सफेद, ये पाँच रंग बौद्ध धर्म में पंच भूत का प्रतीक माने गए हैं। यह चित्रकला बौद्ध धर्म की वज्रयान शाखा पर आधारित है। दूसरी प्रकार के तंगका चित्र का प्रयोग पूजा या प्रदर्शन के लिए किया जाता है। मुख्यतः पारंपरिक तौर पर जब इसे प्रदर्शन हेतु उपयोग नहीं किया जाता तब इसे लकड़ी पर लपेटकर रख दिया जाता है। अन्यथा इसे दीवार पर लटका दिया जाता है। असम में यह स्क्रॉल चित्र (लपेटा चित्र) के रूप में प्रचलित है। तंगका दीवार चित्र बौद्ध मठों की दीवारों व छतों पर भी बनाए जाते हैं। ये कपड़े पर भी

बनाए जाते हैं, इनके मुख्य विषय हैं—धर्म चक्र, पवित्र बौद्ध मंत्र व बुद्ध के जीवन की कथाएँ। इन चित्रों में मुख्य रूप से बुद्ध को बीच में चित्रित किया जाता है जो अन्य मनुष्य आकारों से बड़ा होता है। उसके आस-पास सफेद बादल और आभा वृत्त बनाए जाते हैं। इस मुख्य विषय के पृष्ठ भाग पर भू-दृश्य का चित्रण होता है। इन चित्रों को बनाने से पूर्व एक काष्ठ के फ्रेम पर कसा जाता है, बनने के बाद फ्रेम से उतार लिया जाता है व विभिन्न प्रकार के डिजाइन वाले मोटे वस्त्रों को चारों ओर जोड़कर सजावट के योग्य बनाया जाता है। चित्र को रंगने हेतु प्राकृतिक रंगों का प्रयोग किया जाता है, आजकल एक्रिलिक रंग भी प्रयोग किए जा रहे हैं।

पांडुलिपि चित्र

असम में पांडुलिपि चित्र की परंपरा मध्य काल से चली आ रही है। इन्हें साँची पट (साँची पेड़ की छाल) व तुला पट (हस्त निर्मित कागज) पर बनाया जाता है। इनको एक सुंदर काष्ठ के बक्से में सुरक्षित रखा जाता था। ये सचित्र पांडुलिपियाँ हैं, जिनमें कथाओं के साथ उससे जुड़े लघुचित्र भी बनाए जाते हैं। इसकी मुख्यतः तीन शैलियाँ हैं।

ताई

अहोम शैली में गीत गोविंद, भागवत पुराण, आनंदी पटन, हस्तिविद्यामावा, आनंद लहरी आदि। **सत्तरीय शैली** में भारतीयता की महक अधिक है। यह मुगल, राजपूत व पहाड़ी शैली से प्रभावित है। **अहोम दरबार शैली** शिवसिंघम के काल में आरंभ हुई। नाटकीय चित्रण, गीतमय प्रभाव, सादगी से चित्रण, आकर्षक रंग योजना इसकी मुख्य विशेषताएँ हैं। दारंग शैली और गढ़ गाँव शैली दोनों ही दरबार शैली के प्रकार हैं।

नैसर्गिक सौंदर्य की इस अनुपम भूमि में जितनी घाटियाँ हैं, उससे कहीं अधिक वैविध्यपूर्ण यहाँ की कला है। इस सुरम्य भूमि के लोग अपनी सांस्कृतिक विरासत के साथ इस क्षेत्र को अति असाधारण बना देते हैं। कला व भौगोलिकता द्वारा ही किसी भी प्रदेश की अपनी पहचान बनती है और ये दोनों ही विशेषताएँ इन पूर्वोत्तर राज्यों की 'सात भगिनियों' में हैं। इन सात बहनों की शिल्प कला अद्‌भुत है, जिसमें जनजातीय कला का प्रभाव परिलक्षित होता है। उत्तर-पूर्वी समाज अपनी कला द्वारा भारत के एक जीवंत समाज के रूप में उभरा है। यहाँ की कला दर्शक के मन में छाप छोड़ने में सफल रही है।

पूर्वोत्तर भारत, हिंदी और महात्मा गांधी

पूर्वोत्तर भारत की सांस्कृतिक धरोहर बहुत संपन्न है। यहाँ की संस्कृति अनोखी है और वर्षों से इसके कई अवयव अब तक अक्षुण्ण हैं। आक्रमणकारियों तथा प्रवासियों से विभिन्न चीजों को समेटकर यह एक मिश्रित संस्कृति बन गई है। आधुनिक पूर्वोत्तर भारत का समाज, भाषाएँ, रीति-रिवाज इत्यादि इसका प्रमाण हैं। कामाख्या मंदिर और अन्य उदाहरण स्थापत्य कला के अतिसुंदर नमूने हैं। गुम्पा नृत्य एक तिब्बती बौद्ध समाज का सिक्किम में छिपा नृत्य है। पूर्वोत्तर भारत का समाज बहुधार्मिक, बहुभाषी तथा मिश्र-सांस्कृतिक है। पारंपरिक पारिवारिक मूल्यों को काफी आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

प्रकृति का अछूता सौंदर्य और जनजातीय संस्कृति व सभ्यता की धरोहरें अगर आप मूल रूप में देखना चाहते हैं तो भारत के पूर्वोत्तर राज्यों की सैर पर जाएँ। असम, मेघालय, मिजोरम, मणिपुर, नगालैंड, अरुणाचल, त्रिपुरा और सिक्किम कुल आठ राज्यों वाला यह क्षेत्र तरह-तरह के जीव-जंतुओं और पेड़-पौधों के अलावा लोक संस्कृति तथा कलाओं से भरपूर है। सौ से अधिक जनजातियाँ व उपजातियाँ इस क्षेत्र में हैं। साथ ही पूर्वोत्तर भारत में साहित्य रचने के लिए विपुल विषय भंडार हैं। इसे हिंदी भाषा के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास किया जा रहा है। इस क्षेत्र के लोगों में त्याग है, समर्पण है, पवित्र निष्ठा है, जो साहित्य के लिए सार्थक है। यहाँ सत्य की शोधक मनोवृत्ति है। स्वार्थों से हटकर मानवीय कल्याण भाव से जुड़ी चेतना है, बुराइयों के विरुद्ध चुनौती भरा अनुशासन है, करुणा से भरी मानवीय संवेदना है, जो साहित्य का विषय बन सकती है। इस क्षेत्र में एक ऐसा राज्य भी है जहाँ मातृसत्तात्मक प्रथा है जो अनायास ही साहित्यकारों का ध्यान आकृष्ट करती है। जरूरत है इन सब विषयों पर अपनी लेखनी चलाने और यहाँ की संस्कृति को भारत के जन-जन तक पहुँचाने की।

पूर्वोत्तर हिंदी अकादमी से जुड़ने के बाद राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की विचारधारा के प्रचार-प्रसार के लिए पूर्वोत्तर भारत के तीन राज्यों में जाने का अवसर मिला। इस अकादमी के लक्ष्यानुसार राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रचार तो किया ही जाता है, साथ ही महात्मा जी के विचारों को भी लोगों तक पहुँचाने का कार्य अकादमी द्वारा किया जाता है। क्योंकि हम मानते हैं राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के विचारों का प्रचार एक तरह से हिंदी का प्रचार करने जैसा है। 2006 में श्री प्रमोद प्रकाश श्रीवास्तव, भारतीय प्रशासनिक सेवा, माननीय सदस्य, उत्तर-पूर्वी परिषद, शिलांग ने हमें यह सलाह दी कि हम लोग

डॉ. अकेलाभाई

जन्म : 25 दिसंबर, 1960

शिक्षा : एम.ए. (हिंदी), पी-एच.डी. (हिंदी)।

संप्रति : आकाशवाणी में उद्घोषक ग्रेड-2 के पद पर कार्यरत। मानद सचिव—पूर्वोत्तर हिंदी अकादमी, शिलांग।

प्रकाशन : सैकड़ों पत्र-पत्रिकाओं में हजारों रचनाएँ विविध विधाओं में प्रकाशित।

सम्मान : सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय द्वारा मौलिक लेखन के लिए भारतेन्दु हरिश्चंद्र पुरस्कार 2009 सहित विभिन्न क्षेत्रों में योगदान के आधार पर 50 से अधिक अन्य संस्थाओं के राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय सम्मान एवं पुरस्कार।

संपर्क : मो.– 9774286215, 9436117260

ई-मेल : drakelabhai@gmail.com

हिंदी के साथ-साथ महात्मा गांधी के विचारों को भी जन-जन तक पहुँचाएँ। महामना पं. मदनमोहन मालवीय, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन प्रभृति ने हिंदी भाषा और साहित्य के विकास को दृष्टि में रखते हुए सन् 1910 में हिंदी साहित्य सम्मेलन की स्थापना की। संपूर्ण भारत को एक सूत्र में बाँधने के लिए महात्मा गांधी एक राष्ट्रभाषा की परिकल्पना करने वालों के सूत्रधार रहे हैं। श्रीवास्तव जी के सुझाव पर हम लोग अमल करने लगे और 2006 से ही मेघालय में गांधी उत्सव का आयोजन प्रतिवर्ष होने लगा। इसी क्रम में वर्ष 2012 में मिजोरम की राजधानी आइजोल से 155 कि.मी. दूर लुंगलेई जिले के पुकपुई गाँव में स्थित जवाहर नवोदय विद्यालय के परिसर में चार दिवसीय गांधी कार्यशाला का आयोजन किया गया। वहाँ पहुँचने में जितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, हम उन्हें शब्द नहीं दे सकते। हिंदी और अंग्रेजी को समझने वाले लोग कम मिल रहे थे। हम अपने देश में ही अनजान बने दिख रहे थे। वे हम पर अपनी रहस्यमय दृष्टि डाल रहे थे। ऐसा लग रहा था कि बिना पासपोर्ट और वीजा के हम विदेश में सफर कर रहे हैं। पानी की समस्या चारों तरफ दिखाई दे रही थी, फिर भी उस विद्यालय के प्रधानाध्यापक श्री विमल कुमार मिश्र, हिंदी के शिक्षक श्री जान मुहम्मद अंसारी और सीमा सुरक्षा बल के अधिकारियों और कर्मचारियों ने हमें बहुत सहयोग किया और हम इस आयोजन को सफल बना पाए। सीमा सुरक्षा बल, मेघालय सीमांत के तत्कालीन उप-महानिरीक्षक श्री अशोक कुमार शर्मा ने हमें आइजोल और लुंगलेई में वाहन, भोजन और आवास की व्यवस्था करवाई थी। हमारे लिए सब कुछ आसान हो गया था।

अकादमी के चार सहयोगियों, डॉ. अरुणा कुमारी उपाध्याय, श्रीमती बबीता जैन, श्रीमती मञ्जु लामा और कुमारी हेमारानी वैश्य ने सिक्किम की राजधानी गंगटोक और एक गाँव डुगा में गांधी सेमिनार और गांधी कार्यशाला के आयोजन में सफलता प्राप्त की। गवर्नमेंट सेकंडरी स्कूल, डुगा के प्रधानाध्यापक श्री धन बहादुर क्षेत्री और स्थानीय पत्रकार श्री संजय अग्रवाल ने काफी सहायता कर इस कार्यशाला को सफल बनाया। डुगा में कुल तीन दिवसीय कार्यशाला थी, जिसे हमने वहाँ के स्थानीय लोगों की सहायता से की। सिक्किम के तत्कालीन राज्यपाल श्री वाल्मीकि प्रसाद सिंह की भेंट हमारे लिए काफी प्रेरणादायक सिद्ध हुई। राजभवन तथा प्रधानाध्यापक के घर पर हमारा जो आदर और सत्कार किया गया, उसे हम कभी नहीं भुला सकते हैं। राजभवन में राज्यपाल महोदय ने हमें काफी समय देकर हमारा उत्साह बढ़ाया। महात्मा गांधी के विचारों तथा अन्य महापुरुषों के विषय में काफी देर तक हमारी बातचीत होती रही। बात करते-करते भोजन का समय हो गया तो पता चला कि दोपहर का भोजन भी राजभवन में ही करना है और हम सातों लोगों ने दोपहर के स्वादिष्ट भोजन का खूब आनंद उठाया। राजभवन में भोजन करने का यह मेरा तीसरा अनुभव था। राज्यपाल महोदय ने आश्वासन दिया कि सिक्किम में महात्मा गांधी के विचारों के प्रचारार्थ जो भी कार्यक्रम आयोजित किए जाएँगे, उनका सहयोग और समर्थन रहेगा।

सिक्किम की राजधानी गंगटोक के प्रेस क्लब में गांधी सेमिनार के आयोजन में वहाँ के पत्रकारों ने हमारा खूब साथ दिया। गंगटोक और सिलीगुड़ी से प्रकाशित होने वाले सभी अखबारों ने इस समाचार को अपने-अपने समाचार पत्रों में स्थान दिया। गंगटोक शहर की जितनी भी मैं तारीफ करूँ, वह कम ही रहेगा। वहाँ का प्राकृतिक सौंदर्य, वहाँ के लोगों का मधुर-स्नेहिल स्वभाव बरबस ही हमें आकर्षित कर गया। नगर सफाई, शांत वातावरण, रमणीय स्थल, विश्व प्रसिद्ध गोम्पा, वन झाखरी उद्यान, जल-प्रपात, पुष्प-उद्यान, रोप-वे सभी कुछ मनमोहक लगे। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी पर चर्चा शुरू हुई तो वहाँ लोगों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया और उन्होंने माना कि महात्मा गांधी के विचार, सत्य और अहिंसा का मार्ग आज अत्यंत प्रासंगिक है। वहाँ श्री अमर बानिया लोहोरो ने हमारा मार्गदर्शन किया और बराबर हमारे साथ सहयोग करते रहे। यहाँ तक कि वहाँ के अनजान लोगों ने भी हमारा मार्गदर्शन किया। जिसने भी सुना हम गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली के तत्वावधान में आयोजित कार्यक्रम में आए हैं, वह सहयोग और समर्थन के लिए तैयार था।

सिक्किम की यात्रा पूरी करने के बाद हमारी यात्रा नगालैंड के लिए आरंभ हुई। हम प्रातः पाँच बजे ही नगालैंड की धरती दीमापुर पहुँच गए, अभी अँधेरा था। कोई ऑटो-रिक्शा वाला तैयार नहीं हो रहा था। एक तैयार हुआ और रास्ते भर हमें आतंकित करता रहा। जैसे, सर... वहाँ नहीं जाइए, रास्ता बहुत खराब है। कोई नहीं जाता। दो दिनों से एक ऑटो-रिक्शा वाले को पकड़कर रखा है, आजकल में मार देंगे। सभी लोग भयभीत हैं। आप लोगों को यहाँ के बारे में कोई जानकारी नहीं है, इसीलिए बता रहा हूँ और फिर हमें चार मील में छोड़ दिया यह कहकर कि वह इससे आगे नहीं जा सकता है। हमें रास्ता पता नहीं था। कुमारी हिमा रानी वैश्य और केंद्रीय हिंदी संस्थान, दीमापुर के क्षेत्रीय निदेशक डॉ. रामनिवास साहू हमारे साथ थे। इन दोनों की कोई प्रतिक्रिया नहीं थी। आगे जाना है या नहीं। रिक्शे से उतरने के बाद दोनों मौन, मेरे निर्णय की प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं अपना निर्णय क्या देता, उन्हें दिखाने के लिए साहसी बन रहा था, पर अंदर से तो मेरी भी हालत खराब हो गई थी। कहीं कोई अनहोनी हो गई तो...। साहस जुटाते हुए मैंने कहा, “अरे, आप लोग क्यों डरते हैं, सरल काम तो सभी करते हैं, थोड़ा कठिन काम करके भी देखते हैं। यदि कुछ होना होगा तो हो जाएगा।” हमने ऊपर के मन से साहस दिया तो वे दोनों चलने को तैयार हो गए। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और अपने गुरुजनों का स्मरण किया। फिर एक रिक्शावाला जाने को तैयार हुआ। रास्ते में चलते-चलते उसने दिखाया... ये यू जी का कैंप

है। हम समझे नहीं। यू जी क्या है...। अरे साहब... यू जी मतलब अंडरग्राउंड... फिर थोड़ा सहमा और कहा किराया हमें दोनों तरफ का देना होगा... क्योंकि उधर हमें कोई सवारी नहीं मिलेगी...।

थोड़ी दूर जाने के बाद घना जंगल शुरू हो गया और हमारा डर कई गुना बढ़ गया...। हम तीनों ऐसे शांत होकर बैठ गए, जैसे हम निर्जीव प्राणी हों। रिक्शा तेज गति से आगे बढ़ रहा था। उससे भी तेज गति से एक दूसरा रिक्शा आया और हमारे सामने रुक गया। हमें तो ऐसा लगा आगे कोई बड़ा खतरा है। मैंने रिक्शेवाले से कहा, "रिक्शा नहीं रोकना...गति तेज करो और आगे बढ़ो...।" हम तेज गति से आगे बढ़ते रहे और मंजिल कितनी दूर है...कुछ पता नहीं चल रहा था। डर से हम कुछ भी नहीं पूछ रहे थे। डरते-डरते मैंने रिक्शेवाले का नाम पूछा तो उसने उत्तर दिया, "साहब नाम जानकर क्या करेंगे। हम आपको सही जगह पर पहुँचा देंगे। आपको डरने की बात नहीं।"

"तुमने हिंदी कहाँ से सीखी।" मैंने पूछा तो उसने बताया कि वह असम का रहने वाला है। काफी दिनों से यहाँ रिक्शा चला रहा है। लगभग दो घंटे के बाद हम निहोखु स्थित जवाहर नवोदय विद्यालय के परिसर में थे। वहाँ सत्कार के लिए सभी शिक्षक अपने प्रधानाचार्य के साथ उपस्थित थे। वहाँ के विद्यार्थी कार्यशाला में भाग लेने के लिए काफी रोमांचित लग रहे थे। उनके लिए यह एक नवीन अवसर था। हम तीनों को देखकर कुछ लोग आए यह पूछने के लिए कि क्या हम इंडिया से आए हैं। प्रधानाचार्य ने बताया कि ये लोग इंडिया से आए हैं। कितने लोग हैं, किसलिए आए हैं, क्या रात में भी रुकेंगे...इन सभी प्रश्नों का उत्तर जानने के बाद वे लोग चले गए। दूसरे दिन हम समापन की तैयारी कर रहे थे। फिर लोग आए यह जानने के लिए कि हम यहाँ क्या करने वाले हैं। जानने के बाद चले गए। भीतर से हम जितना भय-ग्रस्त थे, उसे दबाने का खूब प्रयास कर रहे थे। प्रधानाचार्य ने हमें खूब भरोसा और विश्वास दिलाया कि हम बिलकुल सुरक्षित हैं।

कार्यशाला के दौरान पता चला कि यहाँ पर जवाहर नवोदय विद्यालय की स्थापना के बाद बच्चों में पढ़ने की जिज्ञासा पनपी है। विद्यालय के प्रधानाचार्य ने बताया कि यहाँ विद्यालय का परिसर तैयार हो रहा है। विद्यार्थियों के विषय में पता चला कि वे समय पर और हर दिन कक्षा में उपस्थित नहीं होते हैं। पढ़ाई में उतनी रुचि भी नहीं। कभी-कभी मदिरापान भी करते हैं और एक-दूसरे से लड़ाई भी करते हैं। इन्हें सँभालना बहुत मुश्किल होता है। कुछ छात्र तो कई वर्षों तक एक ही कक्षा में पढ़ते रहते हैं। उल्लेखनीय है कि जवाहर नवोदय विद्यालय में विद्यार्थियों को भोजन, वस्त्र, आवास सहित पुस्तकें, कलम, कागज सभी सामग्री मुहैया कराई जाती है। छात्रों को 12वीं कक्षा तक मुफ्त शिक्षा देने का प्रावधान है। अधिकतर स्थानीय छात्रों को ही नामांकन की सुविधा दी जाती है।

कार्यक्रम समाप्त होने के बाद जिस रिक्शेवाले को बुलाया था, वह देर करने लगा तब मेरा साहस और घटने लगा। शाम को गाड़ी पकड़नी थी दीमापुर से और रिक्शावाला नहीं पहुँच रहा था। काफी तनावपूर्ण प्रतीक्षा करने का बाद वह आया, हम रिक्शे में बैठे, कुछ देर के बाद उसने रास्ता बदल दिया तो हमारी जान ही निकल गई। सोचा, हमें यह कहाँ ले जा रहा है, पर पूछने का साहस भी नहीं हुआ। हमने सोचा किसी और रास्ते से ले जाएगा, पर वह तो अपने घर लेकर चला गया, बोला, "आप लोग बाहर से आया है, यहाँ कोई आता नहीं है। आप लोग हमारे घर एक कप चाय पीकर जाइए।" समय निकलता जा रहा था। गाड़ी का समय भी नजदीक आ रहा था। फिर उसकी बात भी माननी थी। उसने अपना घर दिखाया, अपनी पत्नी, माँ और बच्चों से मिलवाया। उसके सत्कार से हम गदगद हो गए। फिर उसने पूछा कि हम यहाँ किसलिए आए हैं। मैंने कहा कि हम महात्मा गांधी जी के विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए आए हैं। उसका सवाल था कि महात्मा गांधी कौन हैं, वह नहीं जानता है क्योंकि पढ़ा-लिखा नहीं है। मैंने अपने बटुए से एक नोट निकाला, उसने लेने के लिए हाथ बढ़ाया। मैंने कहा कि तुम रोज गांधी जी देखते हो, ये हैं महात्मा गांधी, जो हमारे राष्ट्रपिता हैं। वह कुछ नहीं समझा और अपना सिर हिलाता रहा। हम किसलिए आए हैं, इससे उसको कुछ लेना-देना नहीं था। उसने कहा कि साहब इधर बाहर से कोई आता नहीं है, आप लोग आए हैं हमें खुशी ही, आप लोगों को चाय पिलाकर बहुत अच्छा लगा। बाँस और पुआल से बने घर में हमें बड़ी शांति मिली और उसकी पत्नी के हाथ की लाल चाय पीकर ऐसा लगा कि हम अपने घर की ही बनी चाय पी रहे हैं।

आते समय मैं सोच रहा था, इस संसार में हर तरह के लोग मिलते हैं। यह कितना भला आदमी है। बिना नाम जाने, पता पूछे हमें अपने घर ले गया। हमारा सत्कार किया और अपने बागान का तामुल-पान खाने के लिए दिया। मैं तामुल-पान नहीं खाता। हिमा ने तामुल लेकर अपने बैग में डाल ली और बैग से निकालकर चिप्स के पैकेट उसके बच्चों के लिए दिया, वह हँसने लगा। उसने अपने बारे में बताया कि उसकी माँ तभी विधवा हो गई थी जब वह तीन साल का था। माँ ने मजदूरी करके उसे पाला है अब वह माँ और बच्चों के लिए रात-दिन मेहनत करता है। अँधेरा होने लगा था और गाड़ी छूटने से पहले ही हम दीमापुर स्टेशन पर पहुँच चुके थे। बड़ी शांति मिल रही थी कि इस दुर्लभ स्थान पर हमने यहाँ के बच्चों के लिए कुछ किया है। मन में शांति लिए दीमापुर के प्लेटफार्म संख्या 1 पर गाड़ी के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

गुवाहाटी आने वाली गाड़ी की प्रतीक्षा तो पूरी हो गई, लेकिन हमें उस दिन की प्रतीक्षा है जिस दिन भारत का एक भी नागरिक यह नहीं पूछेगा कि महात्मा गांधी कौन हैं?

श्री मारवाड़ी हिंदी पुस्तकालय : एक विरासत

असम में समाज की शायद ही कोई ऐसी संस्था होगी जिसने इतनी बाधाओं को झेलते हुए इतना लंबा सफर तय किया हो। पर 'श्री मारवाड़ी हिंदी पुस्तकालय' गत 95 वर्षों से लगातार हिंदी के प्रचार-प्रसार में अहम भूमिका निभा रहा है।

स्वतंत्रता के पूर्व जब गांधी जी पूरे भारतवर्ष में हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे तभी 1923 में गुवाहाटी शहर के कुछ युवकों ने इस अहिंदी भाषी प्रांत में, जहाँ हिंदी के नाम पर या तो एक मिडिल स्कूल चल रहा था या फिर दो-चार लोग बाहर से हिंदी के अखबार मँगा रहे थे, में हिंदी के प्रचार-प्रसार का सपना देखा।

फिर सीमित संसाधनों के बावजूद इस जज़्बात को अंजाम तक पहुँचाने के लिए एक

कांता अग्रवाल

संप्रति : उपाध्यक्ष, श्री मारवाड़ी हिंदी पुस्तकालय, गुवाहाटी, असम।

प्रकाशन : प्रतिबिम्ब (काव्य संग्रह), विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेखन, दूरदर्शन, रेडियो व विभिन्न मंचों पर काव्य पाठ।

संपर्क : मोबाइल– 8638532898

ई-मेल : kantagar026@gmail.com

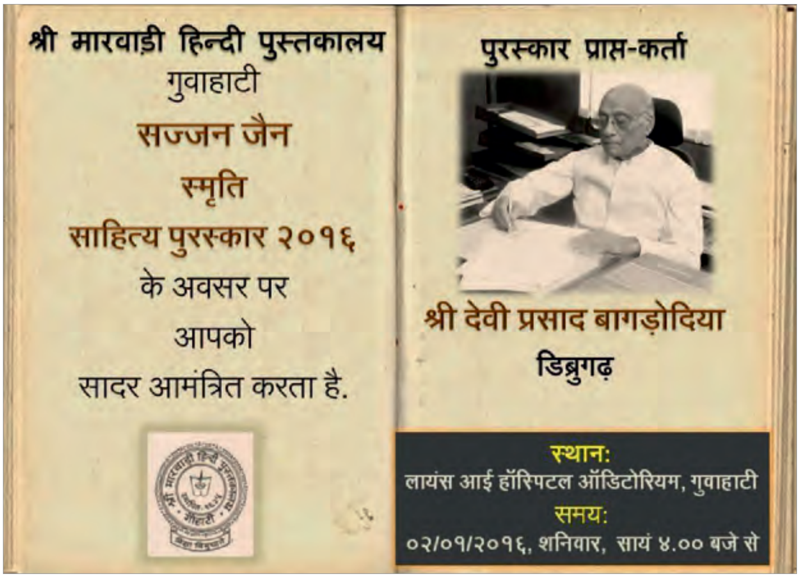

हिंदी पुस्तकालय की स्थापना का निर्णय लिया।

स्व. पंडित श्री केसर देव शर्मा, स्व. जगदीश जी सांगानेरिया, स्व. देवी दत्त जी सांगानेरिया, स्व. राम प्रसाद जी जालान, स्व. बालूराम जी आदि ने मिलकर फैंसी बाजार स्थित श्री गोविंद जी ठाकुरबाड़ी में ही एक हिंदी पुस्तकालय की शुरुआत की। आरंभ में बहुत थोड़ी-सी पुस्तकें जो प्रायः इन्हीं लोगों द्वारा प्रदत्त थीं, के साथ पुस्तकालय का काम शुरू किया गया। फिर एक साप्ताहिक व दो दैनिक अखबार भी मँगाए जाने लगे।

तभी पुस्तकालय में पदार्पण हुआ एक किशोर श्री केदारमल ब्राह्मण का जिसके मन में हिंदी के प्रति दीवानगी इस कदर थी कि वो हिंदी के प्रचार के लिए लोगों के घर-घर जाकर पुस्तकें पहुँचाने लगा और उन्हें पढ़ने के लिए प्रेरित करता रहा। इन्होंने यह कार्य कुछ दिनों के लिए नहीं, बल्कि लगातार छह वर्ष तक करते रहे। इस तरह पुस्तकालय के पाठकों और शुभचिंतकों की संख्या बढ़ने लगी, पर जगह कम पड़ने लगी। अतः पुस्तकालय को 1927-28 में ठाकुरबाड़ी से निकालकर बाहर स्थित एक दुकान में स्थानांतरित कर दिया गया। संचालक मंडली में नया जोश भरा और लोगों को पुस्तकालय में अधिक-से-अधिक सुविधा मुहैया करवाने लगे। यह महसूस होने लगा कि अब और बड़े स्थान की आवश्यकता थी। इसी दौरान गुवाहाटी में हिंदी प्रचारक श्री कालिका प्रसाद शर्मा का आगमन हुआ और उन्हीं के सुझाव से इसे 1930 में बद्रीनाथ मिडिल स्कूल में स्थानांतरित कर दिया गया।

श्री केदारमल जी पुराने समय को याद करते हुए कहते हैं कि उस समय युवाओं में राष्ट्र एवं राष्ट्रभाषा के प्रति प्रेम था। आशा

है कि आज का युवा भी राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों को समझेगा। वे पुस्तकालय में पाठकों की रुचि बरकरार रखने हेतु तरह-तरह की साहित्यिक प्रतियोगिताएँ करवाते रहते थे। सन् 1931 में जब शर्मा जी वकालत करने कलकत्ता चले गए तब स्व. ज्वाला प्रसाद जी ने

> **"वयोवृद्ध कार्यकर्ता श्री केसरदेव जी बावरी ने अध्यक्ष का पद सँभाला और श्री प्रमोद सर्राफ जी ने मंत्रिपद और पुस्तकालय के रंग बदलने लगे। पुस्तकालय नए आयामों को छूने लगा। अब पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या 7,800 से 15,000 तक पहुँच चुकी थी। इसी साल पहली बार पुस्तकालय की स्मारिका का प्रकाशन किया गया और पुस्तकालय का एक नया संविधान भी बनाया गया। इस तरह पुस्तकालय उन्नति के पथ पर दौड़ने लगा। सन् 1980 में श्री अरुण कुमार बजाज ने अध्यक्ष का पदभार सँभाला। अब पुस्तकालय के सदस्यों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही थी और सोसायटी एक्ट के अंतर्गत इसका पंजीकरण करवाया गया। 1986-87 में इस पुस्तकालय द्वारा पहली बार अखिल भारतीय स्तर पर कविता, कहानी एवं निबंध प्रतियोगिता का सफल आयोजन किया गया।"**

कार्यभार बहुत जिम्मेदारी के साथ सँभाला। बहुत-सी नई पुस्तकें मँगाई गईं, कई पत्र-पत्रिकाएँ भी शुरू की गईं। 1939 में पहली बार औपचारिक रूप से इस संस्था के अध्यक्ष का चुनाव हुआ और हिम्मत सिंह को अध्यक्ष के रूप में चुना गया और 1954 तक उन्होंने लगातार अपनी सेवाएँ दीं।

पुस्तकालय अब एक वटवृक्ष का रूप धारण कर चुका था। इस दशक में पुस्तकालय ने अपनी उन्नति की। अनेक नए पाठक पुस्तकालय से जुड़े। 1939 में 3,786 पाठक वाचनालय से लाभान्वित हुए और 1940 तक यह संख्या 6,500 तक पहुँच गई। अब तक पुस्तकालय को स्व. शिवदत्त राय धानुका द्वारा प्रदत्त भवन में स्थानांतरित कर दिया गया था। इस दशक में पुस्तकालय में काका साहेब कालेलकर, बाबा राघवदास हनुमान पोद्दार तथा गोपीनाथ का पदार्पण हुआ। इस तरह पुस्तकालय का विकास द्रुत गति से होने लगा।

इस बीच करीब 45-50 वर्षों तक पुस्तकालय ने काफी उतार-चढ़ाव देखे। बहुत-से अध्यक्ष और मंत्री आए, जिनमें खासतौर से श्री राधा कृष्ण सिवोटिया, श्री हेमचंद्र शर्मा एवं श्री केसरदेव बावरी, श्री शंकरलाल सुरेका, श्री राम कुमार हिम्मत सिंहका, श्री अरिदमन सिंह कोठारी, श्री नंद किशोर शर्मा आदि का प्रयास सराहनीय रहा। परंतु 1962 तक पुस्तकालय में सिर्फ 200 पुस्तकों की ही बढ़ोतरी हो पाई थी।

सन् 1961 से 1973 तक श्री केदारमल ब्राह्मण तथा श्री भगवती प्रसाद सर्राफ ने अध्यक्ष एवं मंत्री का पदभार सँभाला और विपरीत परिस्थितियों में भी पुस्तकालय की पूर्व स्थिति को बरकरार रखा। इनके अलावा श्री महादेव प्रसाद शर्मा, श्री मुरारी लाल वर्मा ही रामकुमार भातरा आदि लोगों ने भी पुस्तकालय की भरपूर सेवा की जो सिर्फ आँकड़ों से नहीं मापी जा सकती।

अब पुस्तकालय ने 1978 के साल में प्रवेश किया। यह पुस्तकालय के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण वर्ष रहा और पूर्वांचल में 'मारवाड़ी युवा मंच' युवाओं को जगाने का कार्य कर रहा था और युवा मंच के प्रथम अधिवेशन पर इस पुस्तकालय के बारे में विस्तृत चर्चा की गई।

फिर से वयोवृद्ध कार्यकर्ता श्री केसरदेव बावरी ने अध्यक्ष का पद सँभाला और श्री प्रमोद सर्राफ जी ने मंत्रिपद का और पुस्तकालय

के रंग बदलने लगे। पुस्तकालय नए आयामों को छूने लगा। अब पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या 7,800 से 15,000 तक पहुँच चुकी थी। इसी साल पहली बार पुस्तकालय की स्मारिका का प्रकाशन किया गया और पुस्तकालय का एक नया संविधान भी बनाया गया। इस तरह पुस्तकालय उन्नति के पथ पर दौड़ने लगा। सन् 1980 में श्री अरुण कुमार बजाज ने अध्यक्ष का पदभार सँभाला। अब पुस्तकालय के सदस्यों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही थी और सोसायटी एक्ट के अंतर्गत इसका पंजीकरण करवाया गया। 1986-87 में इस पुस्तकालय द्वारा पहली बार अखिल भारतीय स्तर पर कविता, कहानी एवं निबंध प्रतियोगिता का सफल आयोजन किया गया।

पुस्तकालय के विकास की सीढ़ी पर कुछ चुनिंदा नाम श्री रतन कुमार धानुका, श्री पदम कुमार तिवारी, श्री श्याम लाल अग्रवाल,

श्री कमलचंद जैन, श्री श्याम सुंदर लोहिया, श्री प्रभु दयाल जी दालान, श्री गोविंद राम शर्मा, श्री हरि प्रसाद शर्मा, श्री अशोक चौधरी आदि का बहुत ही सराहनीय योगदान रहा।

पुस्तकालय में हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु कई बौद्धिक एवं व्यक्तिगत विकास के साप्ताहिक और वार्षिक कार्यक्रम किए जाते हैं। विभिन्न सामयिक विषयों पर विचार गोष्ठियाँ, साहित्यिक परिचर्चाएँ, कवि गोष्ठियाँ और कई प्रतियोगिताएँ निरंतर होती रहती हैं।

पुस्तकालय परिसर में असमिया साहित्यकार होमेन बोरगोहांई, मामोनी रायसम गोस्वामी आदि का सम्मान भी किया जा चुका है। यहाँ नियमित रूप से अंग्रेजी के छह, हिंदी के नौ दैनिक समाचार पत्र और अंग्रेजी की 23 और हिंदी की 32 पत्रिकाएँ भी निरंतर आती रही हैं। पिछले दशक में श्री अनिल जी जैना, श्रीनारायण खाखोलिया, श्री रवि अजीत सरिया आदि की अध्यक्षता में पुस्तकालय नए आयामों को छू रहा है।

हिंदी के प्रति समाज में रुझान पैदा करने के उद्देश्य से पुस्तकालय पिछले आठ सालों से लगातार एक बड़े कवि सम्मेलन का आयोजन जनवरी माह में करता आ रहा है जिसमें करीब 1200 श्रोता सक्रिय सहभागिता करते हैं। सन् 2013 से पुस्तकालय में एक द्विवार्षिक सज्जन जैन स्मृति साहित्य पुरस्कार भी दिया जा रहा है जो कि पूर्वोत्तर में हिंदी के क्षेत्र में सर्वाधिक कार्य करने वाले व्यक्ति को दिया जाता है। पुस्तकालय में कमला पोद्दार विद्या ज्योति फाउंडेशन के सौजन्य से 10वीं और 12वीं के छात्र-छात्राओं के लिए छात्रवृत्ति की शुरुआत भी की गई है।

पुस्तकालय में नाममात्र की फीस देकर कोई भी हिंदी प्रेमी सदस्यता ग्रहण कर सकता है और यहाँ के पुस्तक भंडार का लाभ उठा सकता है। केंद्र सरकार के हिंदी निदेशालय से इसे एक निश्चित राशि का अनुदान कई सालों से प्राप्त होता रहा है। हमारे पुस्तकालय में करीब दस हजार पुस्तकें हैं जिनका ऑटोमेशन का कार्य प्रगति पर है। वर्तमान में कार्यान्वित पुस्तकालय में कुछ आधुनिक सुविधाओं और स्थान के अभाव के कारण इस पुस्तकालय को अतिशीघ्र एक आधुनिक एवं सार्वजनिक पुस्तकालय में रूपांतरित करने का निर्णय लिया गया है इसलिए यहाँ पर फैंसी बाजार के तीसरे तल्ले पर लगभग 2100 वर्ग फुट जगह का क्रय कर लिया गया है जिसमें डॉ. बाल किशन जालान का सहयोग उल्लेखनीय रहा। भविष्य में इस पुस्तकालय में टीवी, कंप्यूटर आदि से लेकर सभी अति आधुनिक सुविधाओं को उपलब्ध कराने की योजना है। नए पुस्तकालय में हिंदी के अलावा अंग्रेजी एवं असमिया भाषा की पुस्तकें भी संगृहीत की जाएँगी यहाँ पर ऐसी व्यवस्था की जाएगी जहाँ युवा वर्ग भी पुस्तकालय से जुड़े और अपने शोध कार्य के लिए भी यहाँ से साहित्य सामग्री प्राप्त कर सके। इसके अलावा पुस्तकालय परिवार के प्रयासों से दो बाल पुस्तकालय भी खोले गए। नौ दशक से भी पुरानी यह संस्था अपने नए सोपान तय करने की ओर अग्रसर है। समाज के दानदाताओं के सहयोग से अतिशीघ्र ही इस विरासत का एक नया और विस्तृत रूप समाज के सामने पेश होगा जो हिंदी को और संपूर्ण ज्ञान की मशाल को निरंतर समाज में प्रज्वलित करता रहेगा।

उत्तर-पूर्व : जहाँ विभिन्न समुदायों की संस्कृतियों का समन्वय नजर आता है

संस्कृति और प्रजाति के उपादान के नजरिए से उत्तर-पूर्व भारत में रहने वाली जनजातियाँ अत्यंत विचित्र और विविधतापूर्ण हैं। इसीलिए अकादमिक क्षेत्र में मानवशास्त्रियों और लोक संस्कृति के गवेषकों के लिए यह अंचल आकर्षण का केंद्र माना जाता है, लेकिन इतनी सारी विविधता होने पर भी इस अंचल के सामाजिक सांस्कृतिक ढाँचे में ऐसी कुछ खूबियाँ मौजूद हैं जिनकी वजह से यह अंचल भारतीय संस्कृति के दायरे में रहकर भी अपनी एक अलग पहचान रखता है।

भौगोलिक रूप से भारतीय भूभाग के उत्तर-पूर्व कोने में स्थित इस भूखंड ने अतीत से ही भारतीय इतिहास और संस्कृति में उल्लेखनीय योगदान किया है। दूसरी तरफ चीन, बर्मा (वर्तमान म्यांमार), भूटान आदि देशों की सीमा इस अंचल से जुड़ी हुई है। इसीलिए यह प्रत्यक्ष रूप से दक्षिण-पूर्व एशिया का पड़ोसी है। इसीलिए इस अंचल की सामाजिक-सांस्कृतिक परंपरा में दक्षिण-पूर्व एशिया की विशेषताओं का प्रभाव भी नजर आता है।

इस अंचल में युग-युग से एक तरफ पश्चिम, उत्तर और पूरब की तरफ से जनजातियों और संस्कृतियों की धारा प्रवाहित होती रही है, जिनके मिश्रण की प्रक्रिया के साथ यहाँ समाज और संस्कृति का निर्माण हुआ है। प्राचीन काल से ही पश्चिम की तरफ से इस अंचल पर आर्य संस्कृति का प्रभाव नजर आने लगा था और वह अभी भी काफी शक्तिशाली रूप में विद्यमान है। दूसरी तरफ विद्वानों का कहना है कि इस अंचल की संस्कृति में ऑस्ट्रिक और द्रविड़ संस्कृति के उपादान के अंश भी मौजूद हैं, लेकिन अंचल के सामूहिक सामाजिक-सांस्कृतिक विन्यास में भारत-मंगोलियाई या किरात उपादान की प्रमुखता नजर आती है।

उत्तर-पूर्व भारत के पहाड़ी और मैदानी इलाके में रहने वाली विभिन्न स्थानीय जनजातियों के समाज और संस्कृति ने एक-दूसरे के साथ सांस्कृतिक रूप से आदान-प्रदान किया है, इसलिए इनके बीच समानता और सहमर्मिता गौर करने लायक है। इस तरह के सामूहिक उपादान संस्कृति, सामाजिक रीति-रिवाज और लोक संस्कृति आदि विभिन्न क्षेत्र में बिखरे हुए नजर आते हैं।

इस अंचल के पहाड़-मैदान, जनजातीय, गैर-जनजातीय सभी समुदायों की संस्कृतियों में बाँस की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। घर का निर्माण, खेती-बाड़ी, शिकार, मछली पकड़ना, कपड़े की बुनाई आदि जीवन यात्रा के सभी कार्यों में बाँस का इस्तेमाल अपरिहार्य है। और तो और खाद्य पदार्थ की सूची में भी बाँस का स्थान है। सभी श्रेणी के लोगों के लिए बाँस की जड़ प्रिय खाद्य वस्तु है।

पहाड़ी इलाके में रहने वाली सभी जनजाति के लोग झूम खेती पर निर्भर करते हैं। मैदानी इलाकों में भी झूम की खेती का अनुसरण किया जाता है। सभी जनजातियों का प्रमुख खाद्य भात है, लेकिन भात बनाने के लिए या जलपान बनाने के लिए इस अंचल की जनजातियाँ बोरा चावल यानी गोंद युक्त चावल का इस्तेमाल करती हैं। इसी तरह धान या चावल से निर्मित मदिरा का इस्तेमाल पहाड़ और मैदान की विभिन्न जनजातियाँ करती हैं। जनजातीय लोग हों या गैर-जनजातीय, इस अंचल के लोग मूल

दिनकर कुमार

जन्म : 05 अक्तूबर, 1967; मनीगाछी प्रखंड स्थित ब्रह्मपुरा गाँव, दरभंगा, बिहार।

संप्रति : 31 वर्षों से पत्रकारिता और लेखन।

प्रकाशन : दस कविता संग्रह, दो उपन्यास (नीहारिका और काली पूजा), दो जीवनी और असमिया से 60 पुस्तकों का अनुवाद प्रकाशित।

सम्मान : सोमदत्त सम्मान, जस्टिस शारदाचरण मित्र स्मृति भाषा सेतु सम्मान, अनुवादश्री सम्मान और अंतरराष्ट्रीय पुश्किन सम्मान।

संपर्क : मोबाइल– 9435103755

ई-मेल : dinkar.mail@gmail.com

रूप से मांसाहारी हैं। वैसे हिंदू समाज में गौ मांस और अन्य कुछ विशेष पशुओं के मांस का प्रचलन वर्जित है।

सभी जनजातियों की स्त्रियों का प्रमुख परिधान एक जैसा ही है—सीने या कमर से लटकाकर पहना गया एक कपड़ा। असमिया मेखला, मणिपुरी फालेक, बोड़ो दखना, कार्बी पिनी, आदी गाले आदि का स्वरूप लगभग एक जैसा है, नाम भले ही अलग-अलग हैं।

देश के कई राज्यों में कन्या भ्रूण की हत्या होती है और लड़कियों से भेदभाव किया जाता है, लेकिन उत्तर-पूर्व में स्त्री-पुरुष में कोई भेदभाव नहीं किया जाता। कन्या संतान के जन्म पर खुशी मनाई जाती है। विवाह आदि के मामले में देखा जाता है कि प्रायः सभी जनजातियों में वर का परिवार कन्या के परिवार को नगद धन या अन्य मूल्यवान उपहार देता है नहीं तो मजदूरी कर देता है। केवल जनजातीय लोगों के बीच ही नहीं, गैर-जनजातीय लोगों के बीच भी इस प्रथा का प्रभाव नजर आता है। उदाहरण के तौर पर, गैर-जनजातीय असमिया समाज में परंपरागत रूप से वर के परिवार को दिए जाने वाले उपहार की तुलना में कन्या के परिवार को दिए जाने वाले उपहार का महत्व अधिक था।

इस अंचल के गैर-जनजातीय हिंदू समाज में जाति प्रथा का प्रचलन भले ही है, लेकिन भारत के दूसरे इलाकों के हिंदू समाज की तुलना में यहाँ जाति प्रथा काफी शिथिल है। यहाँ जाति आधारित विद्वेष और हिंसा समाज जीवन को नियंत्रित नहीं करती है। हरिजन उत्पीड़न की घटना यहाँ दिखाई नहीं देती।

जाति प्रथा की यह शिथिलता जनजाति और गैर-जनजाति के बीच समानता के पहलू को उजागर करती है। एक पहलू और है कि जनजातीय समाज की तरह यहाँ गैर-जनजातीय समाज में भी किसी जाति-विशेष के साथ किसी पेशे को जोड़कर नहीं देखा जाता। वस्त्र की बुनाई का उदाहरण इस मामले में खासतौर पर उल्लेखनीय है। उत्तर-पूर्व अंचल के जनजातीय और गैर-जनजातीय समाज में वस्त्र की बुनाई करने के लिए कोई निर्धारित सामाजिक श्रेणी नहीं है। यहाँ सभी वर्ण सभी श्रेणी की महिलाएँ अपने घर में हथकरघा पर कपड़ा बुनती रही हैं और यह परंपरा युगों से चलती आ रही है। और तो और उच्च हिंदू वर्ण की महिलाएँ भी अपने हथकरघे पर कपड़े बुनते हुए गौरव महसूस करती हैं और समाज में आदर प्राप्त करती हैं।

इस अंचल के पहाड़ और मैदान में बसे हुए विभिन्न समुदायों के बीच सिर्फ समानता और सहमर्मिता ही नहीं है, बल्कि उनके बीच लोक संस्कृति के आधार भी संरक्षित नजर आते हैं। इन जनजातियों के बीच जो लोक कथाएँ प्रचलित हैं, उनमें काफी एकरूपता और अभिन्नता नजर आती है। कुछ क्षेत्रों में कहानी का छोटा हिस्सा और कुछ क्षेत्रों में कहानी का पूरा हिस्सा एक जैसा है। यह बात सच है कि विभिन्न जनजाति की कहानी में, खासतौर पर पड़ोसी जनजाति की कहानी में नजर आने वाली इस तरह की समानता अंचल की खूबी नहीं कही जा सकती। देश के अंदर विभिन्न इलाकों और धरती के विभिन्न हिस्सों की कहानियों के बीच जो समानता है, उसके बारे में लोक संस्कृति के विद्वान अपनी राय व्यक्त करते रहे हैं।

लेकिन गौरतलब है कि उत्तर-पूर्व भारत में पहाड़ी और मैदानी इलाके में भौगोलिक रूप से दूर-दूर रहने वाली और एक-दूसरे के संपर्क में नहीं आने वाली जनजातियों की कहानियों में निकटता के लक्षण नजर आते हैं। इस तरह के कई उदाहरण रखे जा सकते हैं। असम के पहाड़ी इलाके में रहने वाली कार्बी जनजाति की लोककथा के अनुसार, बो-प्लाक-प्ली पंछी ने जो अंडे दिए, उन अंडों से इस अंचल में मानव प्रजाति का जन्म हुआ। पहले अंडे से ही नाका (नागा), दूसरे अंडे से रामसा (कछारी), तीसरे अंडे से सोमांग (खासी), चौथे अंडे से आहम (असमिया) और आखिरी अंडे से कार्बी आदि पुरुष का जन्म हुआ। इस तरह देखा जाए तो ये सभी जनजातियाँ अपनेपन के बंधन में बँधी हुई दिखाई देती हैं।

मणिपुर में प्रचलित लोक कथा के अनुसार, मैतेई और विभिन्न पहाड़ी जनजातीय लोगों के पूर्वज एक ही भू-गर्भस्थ गड्ढे से ऊपर चढ़कर आए थे, इसलिए उनके बीच भाईचारे का रिश्ता है। नगालैंड के अंगामी और आउ लोगों के बीच प्रचलित इसी तरह की लोक कथा के अनुसार एक ही माता के दो पुत्रों में से एक पुत्र पिता के कोप के कारण पिता के ज्ञान भंडार से वंचित हुआ और दूसरे को ज्ञान का भंडार मिला। पहला नगा पहाड़ पर रहकर नगा लोगों का जनक बना और दूसरा मैदानी इलाके में जाकर गैर-नगा लोगों का जनक बना।

इसी कहानी का एक अलग रूप है कि दोनों भाइयों में मतभेद होने पर दोनों अलग-अलग दिशा में चले गए। पहाड़ पर जाने वाला नगा लोगों का पूर्वज बना और मैदान की तरफ जाने वाला असमिया लोगों का पूर्वज बना।

अरुणाचल के वांचो लोगों की लोक कथा में वर्णित विश्वास के अनुसार, शुरू में वांचो, नक्ते और मैदान के लोगों के पूर्वज पहाड़ पर एक साथ रहते थे। जल प्रलय आने के बाद पहाड़ की तुलना में मैदानी इलाके में पानी की मात्रा ज्यादा हो गई। वांचो लोगों में से कुछ लोग पहाड़ पर रह गए। कुछ लोग पानी की सुविधा प्राप्त करने के लिए मैदान में जाकर बस गए। मैदान में रहने वाले असमिया लोग उस पहाड़ से आए वांचो के वंशज हैं।

अरुणाचल के भाराउं और मिसिमी लोगों की लोक कथा में बताया गया है कि प्रथम मानव संतान पानी में बहकर मैदान तक गई थी। ज्येष्ठ संतान को छोड़कर सभी संतानें मैदान में ही रह गईं और वही लोग मैदान में असमिया लोगों के पूर्वज बने। पहाड़ पर रहने वाली ज्येष्ठ संतान के वंशज 'वांचो' कहलाए।

अरुणाचल के हसो और सिंफू लोगों की लोक कथाओं में बताया गया है कि इस अंचल के पूर्वज एक साथ स्वर्ग से विभिन्न सामग्री से निर्मित सीढ़ी से होकर धरती तक उतरकर आए थे। इसके अलावा भी कुछ ऐसी कहानियाँ हैं जिनके आधार पर केवल इस इलाके के ही नहीं, धरती के दूसरे इलाके की जनजातियों के साथ भी अपनेपन के रिश्ते की बात उजागर की गई है।

हिंदी और असमिया के सेतु छगनलाल जैन

समन्वय के सेतु, कर्मयोगी, निःस्वार्थ समाजसेवी, स्पष्टवादी लेखक, गरीब तथा निम्नश्रेणी के लोगों के हिताकांक्षी असम तथा असमिया प्रेमी, हिंदी प्रेमी छगनलाल जैन ने असम के मारवाड़ी समाज और असमिया समाज को अपने कृतित्व से अनेक अवदान दिए हैं। छगनलाल जैन थे समकालीन समाज के एक अच्छे वक्ता, लेखक, एकनिष्ठ समाजसेवी और बौद्धिक चेतना के अनन्य प्रतिभू। जैन ने अपनी ऐकांतिक प्रचेष्टा, मनोबल और एकाग्रता के बल पर असमिया और हिंदी भाषी समाज में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त किया था। उनकी सामाजिक चिंतनधारा ने एक अनुकरणीय आदर्श की राह खोल दी थी।

सन् 1924 में बसंत पंचमी के दिन असम के सुप्रसिद्ध व्यावसायिक स्थान पलाशबाड़ी में छगनलाल जैन का जन्म हुआ था। उन्होंने अपने जीवन में काफी संघर्ष किया था। सात वर्ष की कम आयु में ही पिताजी की मृत्यु हो जाने के कारण परिवार के भरण-पोषण का दायित्व उनके कंधों पर आ पड़ा। तिनसुकिया के सेनाईराम हाईस्कूल से असमिया माध्यम से उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। हाईस्कूल में पढ़ाई के दौरान प्रौढ़ शिक्षा दिवस के उपलक्ष्य में असमिया में एक निबंध पाठ किया जिसकी सर्वत्र प्रशंसा हुई। इसके लिए उन्हें पुरस्कार भी मिला था।

छगनलाल जैन ने सन् 1942 में असम की सुप्रसिद्ध कॉलेज—कॉटन कॉलेज में आयोजित कहानी लेखन प्रतियोगिता में भाग लिया था। उसी समय से वे निरंतर साहित्य की सृजनशीलता में जुड़ गए। 1943 में पंडित कमलनारायण देव द्वारा संपादित असमिया पत्रिका 'जयंती' में उनकी 'ब्लैक मार्केट' नामक कहानी प्रकाशित हुई। धीरे-धीरे उनके द्वारा रचित नाटक, उपन्यास, मौलिक निबंध आदि हिंदी और असमिया में भी प्रकाशित होने लगे। 1943 में विशारद की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद कानून की पढ़ाई भी की और वकालत का कार्य शुरू किया, लेकिन सहज-सरल स्वभाव होने के कारण वकालती उन्हें राश नहीं आई। तभी से साहित्य कर्म और पत्रिका प्रकाशन के कार्य में एकाग्रता से लग गए।

साहित्य के क्षेत्र में छगनलाल जैन का काफी सराहनीय और स्मरणीय योगदान रहा। उनकी नौ पुस्तकें प्रकाशित हुईं जिनमें पाँच हिंदी में और चार असमिया में थीं। हिंदी और असमिया दोनों भाषा में जैन ने कई

किशोर कुमार जैन

जन्म : 03 जनवरी, 1961; विजयनगर, असम।

संपादक : पूर्वोत्तर प्रदेशीय मारवाड़ी युवा मंच के मुखपत्र 'युवाशक्ति'।

प्रकाशन : काव्य संकलन 'रौदे पोरा शइचर छाई', 'भाल पोवार शब्द विचारि'। अनेक राष्ट्रीय व स्थानीय हिंदी व असमिया अखबारों व पत्र-पत्रिकाओं में लेख, कहानी, कविता, संस्मरण तथा अनूदित रचनाएँ प्रकाशित, कीर्तन घोषा के एक खंड का अनुवाद।

पुरस्कार : सारस्वत सम्मान, विशिष्ट सरस्वती रत्न सम्मान, विश्व हिंदी संस्थान, 'कल्चरल ऑर्गेनाइजेशन कनाडा से सम्मान' व ऑल इंडिया कल्चरल ऐसोसिएशन द्वारा इंटरनेशनल थिएटर फेस्टिवल में प्रतिभाशाली कलाकार का सम्मान।

संपर्क : मोबाइल— 9864063790

ई-मेल : writterkishore@gmail.com

कहानियाँ लिखीं। उन्होंने ही पहले 'हिंदी-असमिया शब्दकोश' की रचना की।

एक कहानीकार के रूप में छगनलाल जैन द्वारा रचित कई कहानियों में मानव जीवन का संघर्ष यथार्थ रूप में प्रस्फुटित होता है। उनके द्वारा लिखी गई हर कहानियों में सजीवता का प्रमाण मिलता है। उनकी कहानी 'वो भी तो इनसान है' एक अविस्मरणीय कहानी है। एक भिखारी बच्चा रेल के डिब्बे में चढ़ना चाहता है, लेकिन एक अमीर व्यक्ति उसे धकेलकर नीचे गिराने का आदेश देता है। किसी तरह बच्चा गाड़ी में चढ़ जाता है। वह अपने मधुर स्वर में ईश्वर को याद करते हुए गीत गाने लगता है। डिब्बे में नहीं चढ़ने देने वाला वही व्यक्ति उसके मधुर स्वर से प्रभावित होकर उसे 25 पैसा बख़्शीश देना चाहता है जिसे लेने से इनकार करते हुए अपनी आत्मसचेतनता का परिचय देते हुए वह कहता है—"बाबूजी, भिखारी हूँ तो क्या हुआ, मैं भी एक इनसान हूँ।" शिशु के इस करुण क्रंदन और स्वाभिमान के बोध की कहानी पढ़कर दिल भर आता है।

नाटककार के रूप में भी छगनलाल जैन की बहुमुखी प्रतिभा का परिचय मिलता है। 'इनसान की खोज' नामक नाटक में एक पागल आदमी के हाथ में एक दर्पण होता है। वह पागल समाज के तथाकथित अमीर और प्रतिष्ठित व्यक्तियों को दिखाता फिरता है। दर्पण की विशिष्टता यह होती है कि आदमी को बाहर से उसका रूप दिखाई नहीं देता है। आदमी के अंदर की भावनाएँ और वास्तविक स्वरूप को दिखलाने के लिए उन्होंने ऐसा किया था। नाटक की कहानी, संवाद, चरित्र-चित्रण, भाव-भाषा, कथा-दृष्टि से देखा जाए तो छगनलाल जैन का 'संघर्ष' नाटक एक सफल मौलिक नाटक है। यद्यपि नाटक सन् 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन की पटभूमि पर लिखा गया है, लेकिन उसमें पुरानी और नई पीढ़ी के बीच में चल रहे संघर्ष को मूल रूप से विषय बनाया गया है।

छगनलाल जैन की छवि एक स्पष्टवादी कवि के रूप में भी उभरकर आती है। हिंदी और असमिया दोनों ही भाषाओं में उन्होंने कविताएँ लिखीं। उनकी कविताओं में प्रायः जीवन जिज्ञासा और श्रमविमुख आदमी के लिए उत्पन्न हुए दुख की किरणें दिखाई देती हैं।

"असमिया राजवंशी हैं हम
राज करने के लिए जन्मे हैं हम
हाथों से काम करते हैं छोटे लोग
हमें यह शोभा नहीं देता
इसलिए हमने किया है आयात"

उक्त कविता में उनकी असम और असमिया जाति के प्रति अपना प्रेम परिलक्षित होता है। एक श्रेणी के लोगों में बिना किसी परिश्रम के धनी होने की आकांक्षा किस तरह उन लोगों को श्रमविमुख कर देती है और उसे लेकर जो परिस्थितियाँ पैदा होती हैं, उसी मन के दुख को कविता के माध्यम से प्रकट करते हैं।

चयनित शब्द, भाव, भाषा की प्रांजलता और मानव समाज के प्रति आनुगत्य, गहरी आशावाद से मुठ्ठी भर हिंदी असमिया कविताएँ पाठकों के मन को आंदोलित करती हैं, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा। सात वर्ष की आयु में ही पिता की मृत्यु के बाद छगनलाल जैन ने अपनी पढ़ाई के अलावा परिवार के भरण-पोषण की चिंता में हाट-बाजार में सामान बेचने का कार्य किया। सप्ताह में दो या तीन दिन ही स्कूल जाकर पढ़ाई कर पाते थे। इतनी तकलीफ उठाने के बावजूद पढ़ाई के हर स्तर में कीर्तिमान स्थापित करते हुए अंग्रेजी में ऑनर्स सहित स्नातक की पढ़ाई पूरी की। उस समय उनके लिए सरकारी नौकरी प्राप्त करना कठिन नहीं था, लेकिन उन्होंने व्यवसाय करना ज्यादा पसंद किया। जीवन के कटु अनुभव ही उनकी कविताओं और कहानियों में स्पष्ट रूप से झलकता है। उन्होंने हमेशा आत्मनिर्भरशीलता के लिए प्रेरित किया, पर निर्भरशीलता को वे पसंद नहीं करते थे। उनकी रचनाओं में विषयवस्तु की गहराई, मननशीलता, विचार-विश्लेषण और प्रासंगिक दृष्टिकोण ने उनकी लेखनी को अनवद्य और पठनीय कर दिया। असम साहित्य सभा व असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति से समान रूप से जुड़कर असमिया और हिंदी भाषा की सेवा समान रूप से कर एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया। असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के सहयोग से राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए विभिन्न स्थानों पर सभा समिति का आयोजन कर हिंदी भाषा साहित्य पढ़ने के लिए लोगों को अनुप्राणित किया। राष्ट्रभाषा के प्रचार का अनुभव और अन्य आदर्श को लेकर 'राह और रोड़े' नामक मौलिक उपन्यास लिखा। इस उपन्यास से राष्ट्रभाषा के प्रचारकों को गहरी प्रेरणा मिली। इस उपन्यास के दो संस्करण प्रकाशित हुए, लेकिन आज तक उसका उचित मूल्यांकन नहीं हुआ।

छगनलाल जैन ने एक निबंधकार के रूप में 'असम, असमिया तथा मारवाड़ी' विषय पर एक निबंध में असम और असमिया जाति के गठन में और असम के सर्वांगीण विकास और प्रगति के क्षेत्र में असम तथा विभिन्न संप्रदायों के साथ मारवाड़ियों के असीम अवदान का उल्लेख किया था। वे हमेशा कहा करते थे, असम के दुख में दुखी होना और सुख में सुखी महसूस करने वाला ही प्रकृत असमिया है। भारतवर्ष में हिंदी भाषा को संवैधानिक स्वीकृति मिलने के बावजूद कार्य रूप में परिणत न होने के कारण वे दुख प्रकट करते थे। 'हिंदी का पत्र हिंद के नाम' विषय पर एक निबंध में हिंदी भाषा के प्रति हो रही अवहेलना की बात व्यंग्यात्मक रूप में लिखी थी। आजादी के बाद भी राष्ट्रीय मर्यादा न मिलने के कारण उनकी आँखों से आँसू निकल पड़ते थे।

छगनलाल जैन ने असम में रहने वाले विभिन्न समाज, जाति के लोगों के बीच आपसी सद्भाव, पारस्परिक संपर्क मजबूत बनाए रखने का संदेश दिया और इसे अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया था। उनकी रचनाओं में इसका प्रभाव देखा जाता है। हिंदी असमिया शब्दकोश की रचना का मुख्य उद्देश्य भी यही था। उन्होंने सोचा कि सामाजिक मेल-मिलाप और समन्वय स्थापन के क्षेत्र में भाषा रुकावट नहीं बन सकती। वे चाहते थे कि लोग जहाँ रहते हैं उन्हें वहाँ की भाषा सीखनी चाहिए और जहाँ तक संभव हो सके उसे समृद्ध करने के प्रयास में आगे बढ़कर कार्य करना चाहिए।

"छगनलाल जैन की रचनाओं की चुटीली भाषा, स्पष्टवादिता मनुष्य के अंतर की गहराइयों तक छू जाती थी। रूढ़िवादी मारवाड़ी समाज में व्याप्त कुरीतियों, कुसंस्कारों के विरुद्ध भी निरंतर संघर्षशील व मुखर रहे। समाज में व्याप्त पर्दा-प्रथा, दहेज-प्रथा, आडंबर, प्रदर्शन आदि के विरुद्ध वे हमेशा संघर्ष करते रहे। हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में छगनलाल जैन अग्रणी माने जाएँगे। उन्होंने 1950 में 'पूर्वज्योति' नामक हिंदी मासिक समाचार पत्र प्रारंभ किया था।"

छगनलाल जैन की रचनाओं की चुटीली भाषा, स्पष्टवादिता मनुष्य के अंतर की गहराइयों तक छू जाती थी। वे रूढ़िवादी मारवाड़ी समाज में व्याप्त कुरीतियों, कुसंस्कारों के विरुद्ध भी निरंतर संघर्षशील व मुखर रहे। समाज में व्याप्त पर्दा-प्रथा, दहेज-प्रथा, आडंबर, प्रदर्शन आदि के विरुद्ध वे हमेशा संघर्ष करते रहे। हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में छगनलाल जैन अग्रणी माने जाएँगे। उन्होंने 1950 में 'पूर्वज्योति' नामक हिंदी मासिक समाचार पत्र प्रारंभ किया था। यही पूर्वज्योति बाद में साप्ताहिक रूप में प्रकाशित होने लगा। यह साप्ताहिक समाचार पत्र करीब ढाई दशक तक असम के बारे में हिंदी भाषी लोगों को जानकारी प्राप्त कराने का महत्वपूर्ण साधन था। विधवा-विवाह के समर्थन में भी वे निरंतर लेख लिखते रहे। समाज में होने वाले विधवा विवाहों की खबर को वे अपने साप्ताहिक पत्र पूर्वज्योति में प्रमुखता से छापा करते। उनके लेखों की प्रतिक्रियास्वरूप रूढ़िवादियों की धमकियों का भी सामना करना पड़ा। दहेज की कुप्रथा के विरुद्ध वे हमेशा मुखर रहे।

धर्म के नाम पर पाखंड व चोंचलेबाजी के वे घोर विरोधी थे। 'समस्या, एकता और समन्वय' शीर्षक लेख में उन्होंने लिखा था— "सब धर्मों का मूल सत्य एक जैसा ही है। ईश्वर एक है, हम सब एक उसकी संतान हैं, हम सब भाई-भाई हैं, इसलिए हमें सबसे प्रेम करना चाहिए। फर्क हो तो केवल बाहरी आचारों में, क्रिया-कांडों में। जब धर्म के साथ हिंदु, इस्लाम, जैन, बौद्ध आदि शब्द जुड़ जाते हैं, तब वे संप्रदाय हो जाते हैं, संकीर्ण हो जाते हैं।" पूर्वोत्तर प्रदेशीय मारवाड़ी सम्मेलन द्वारा प्रकाशित सम्मेलन समाचार के संपादक भी थे। असम राष्ट्रभाषा समिति द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'राष्ट्रसेवक' के भी वे संपादक थे। आकाशवाणी गुवाहाटी और डिब्रूगढ़ केंद्र से उनके नाटक, निबंध, कहानियाँ आदि प्रसारित होते थे। छगनलाल जैन ने शंकरदेव द्वारा रचित कीर्तन और नामघोषा का हिंदी भाषा में अनुवाद कर आकाशवाणी दिल्ली केंद्र से प्रसारित करवाकर असम की महापुरुषीया धर्म संस्कृति के प्रचार के क्षेत्र में एक महान कार्य किया था। असम और असमिया साहित्य सभा के प्रति उनकी अगाध निष्ठा थी। उन्होंने अपना कष्टोपार्जित धन असम साहित्य सभा को दान कर दिया जिसके ब्याज से आज भी असम साहित्य सभा द्वारा पाँच वर्षों के अंतराल में असम के विशिष्ट साहित्यकार को सम्मान दिया जाता है। यह व्यवस्था अपने जीवितकाल के दौरान ही शुरू कर छगनलाल ने साहित्य के प्रति अपने आनुगत्य और उदारता का परिचय दिया था। हिंदी और असमिया भाषा में साहित्य के सृजनधर्मी लेखक के अवदान को देखते हुए असम सरकार ने उन्हें साहित्य पेंशन देकर सम्मानित किया था।

छगनलाल जैन सिर्फ एक पत्रकार, अधिवक्ता, व्यवसायी, साहित्यकार और समाज सुधारक ही नहीं थे, बल्कि महात्मा गांधी के अहिंसा, सत्य व प्रेम के आदर्शों पर अगाध विश्वास करने वाले एक सच्चे गांधीवादी भी थे। बौद्धिक और सामाजिक दोनों ही क्षेत्र में उनका अवदान सराहनीय रहा है। लेखक, सुवक्ता, पत्रकार होने के अलावा हिंदी भाषा के प्रचार, समाज सुधार तथा असमिया संस्कृति के प्रचार के क्षेत्र में भी उनके प्रयास स्मरणीय रहेंगे। हिंदी, असमिया, अंग्रेजी और बांग्ला भाषा में वे समान रूप से दक्ष थे।

विलक्षण व्यक्तित्व के धनी, सुवक्ता, पत्रकार, समन्वय पुरुष छगनलाल जैन का 07 अक्तूबर, 1992 को 67 वर्ष की आयु में देहावसान हो गया। वे एक विशाल हृदय, विशाल व्यक्तित्व के अधिकारी थे। 'सादा जीवन, उच्च विचार' के महान आदर्श को अपने जीवन में उतारते हुए उन्होंने सारा जीवन असम के सर्वांगीण विकास में न्योछावर कर दिया। वे कहा करते थे, "जीवन में मैं काफी संतुष्ट रहा हूँ क्योंकि अपने गुण और क्षमता की तुलना में मुझे बहुत ज्यादा प्राप्त हुआ है। अयोग्य व्यापारी होने के बावजूद कभी किसी अभाव का सामना नहीं करना पड़ा। सरल स्वभाव के कारण कई लोगों ने मुझे ठगा है, लेकिन मेरे जीवन की गाड़ी सफलतापूर्वक चल रही है। मुझे जरूरत से ज्यादा प्यार, ममता, श्रद्धा मिली है। ऐसे में अपने जीवन में असंतुष्ट रहने की वजह नजर नहीं आती। मैं जीवन में इनसान बनना चाहता था और वही बनने का प्रयास करता रहा।"

"लो यह अश्रुल श्रद्धांजलि, लो यह अनंत नमस्कार
रहेगा युग-युग सजीव, असमिया हिंदी का
ओ मृदुल-भाषी, तुम्हारे साहित्य का चिरंतन उपहार
धारा प्रवाह साहित्य का अनगिन आधार।"

अहोम राजवंश में मैदाम प्रथा

अहोम राजवंश ने असम के कुछ भागों पर सन् 1228 से 1826 तक लगभग 600 वर्ष राज्य किया। अहोम, दक्षिण-पूर्व एशिया की एक अन्यतम जाति ताई लोगों की एक शाखा, शान् के वंशज हैं। पहले ये लोग मंगोलिया और चीन के किसी अंश में निवास करते थे। बाद में प्रवजित होकर युन्नान प्रदेश के मुंरि-मूंराम अंचल और हुकं उपत्यका (घाटी) में अधिकार जमाने लगे। माओलुं राज्य से चु का फा (1228-1268) के नेतृत्व में अहोमों ने सन् 1228 को असम में प्रवेश किया। सन् 1253 में चु का फा ने अपने अनुगामियों के साथ असम के चराईदेव में अपनी राजधानी स्थापित की और राजनैतिक आधिपत्य विस्तार करके शासन करने लगे। साथ-ही-साथ वे ब्रह्मपुत्र उपत्यका के स्थानीय निवासियों के प्रति उदार नीति एवं दृष्टिकोण रखने लगे। अहोमों की धर्मीय उदारता भी प्रशंसनीय थी। अहोमों ने जब असम में प्रवेश किया तब वे अपने साथ अपनी भाषा, कृष्टि, धर्म-विश्वास, परंपरा, राजनीति और शास्त्र लेकर आए थे। उन लोगों की भाषा, कृष्टि, धर्म-विश्वास, परंपरा और संस्कृति ब्रह्मपुत्र उपत्यका के निवासियों से अलग थे। उदाहरण के लिए, आज हम अहोमों के मृतदेह सत्कार के नियम के बारे में कुछ चर्चा करेंगे।

मृत्यु, जीवन-चक्र से जुड़ा हुआ अंतिम संस्कार है। अहोमों में शवों का काष्ठ संस्कार करने का नियम नहीं था। हिंदू धर्म अपनाने से पहले अहोम शवों को दफनाते थे। दफनाने की संपूर्ण प्रक्रिया को 'मैदाम प्रथा' कहा जाता है। अहोमों के मृतदेह सत्कार के नियम हिंदुओं से अलग थे। मृतदेह सत्कार को वे लोग मैदाम में 'गोर करना' कहते थे।

मैदाम अहोम युग के शवों को संरक्षित रखने का विशिष्ट स्थापत्य कला का एक उत्कृष्ट निदर्शन है। अहोम युग में राजा, मंत्रीवर्ग और राजपरिवार के सदस्यों को चराईदेव में मैदाम दिए जाते थे। चराईदेव के अतिरिक्त गड़गाँव और रंगपुर में भी मैदाम दिया जाता था। चराईदेव में लगभग 42 अहोम राजाओं को मैदाम दिया गया था। इनमें से कुछ मैदाम मिट्टी से और कुछ ईंट से निर्मित थे। अहोम लोग शवों को संरक्षण करके पवित्र भाव से मैदाम देते थे। इस तरह से मैदाम देने की प्रथा बहुत प्राचीन है। यह प्रथा ताई लोगों के बीच ईसवी पूर्व से चली आ रही थी। ताई लोग चीन में निवास करने से लेकर असम में राज करने तक यह परंपरा निभाते रहे। पर असम में अहोम युग के शेष भाग में कुछ अहोम राजा हिंदू धर्म ग्रहण करने के पश्चात मृत शरीर को काष्ठ संस्कार करके मैदाम देने लगे। इतिहास के अनुसार, यह नियम बररजा आइकुँवरी फुलेश्वरी देवी (प्रथम अहोम महीयसी जिसने अहोम राज्य की बागडोर सँभाली थी) ने प्रचलित किया।

मैदाम ताई अहोम भाषा का शब्द है। 'मै' का अर्थ सिर और 'डाम' का अर्थ देवता के मर्यादा से समाधिस्थ करना। अहोमों में इतिहास लिखकर रखने की परंपरा थी।

कविता शइकीया राजखोआ

जन्म : 02 अक्तूबर, 1977

शिक्षा : बी.एड., एम.एससी.

संप्रति : विज्ञान शिक्षिका।

प्रकाशन : अदम्य संग्रामी कनकलता बरुआ, एकाजित एकुकि कविता (काव्य संकलन)। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 9101773655

ई-मेल : kabitasaikia1977@gmail.com

इतिहास को असमिया भाषा में 'बुरञ्जी' कहते है। 'बुरञ्जी' ताई अहोम शब्द है। 'बु' का अर्थ है प्राचीन ज्ञान, 'रञ्जी' का अर्थ है भंडार, यानी प्राचीन ज्ञान का भंडार ही है बुरञ्जी। अहोम युग में दो प्रकार के बुरञ्जी देखने को मिलते हैं। राज परिवार के बुरञ्जी और अन्य परिवारों में लिखे गए बुरञ्जी।

अहोम राज्य में स्थापत्य निर्माण करने वाले अभियंता को 'चुङरुङ फुकन' कहा जाता है। प्रत्येक स्थापत्य के बारे में वे लिखकर रखते थे। मैदाम के निर्माण के बारे में जो तथ्य अब तक मिले हैं, वे सभी चुङरुङ फुकन के बुरञ्जी से प्राप्त किए गए हैं।

मैदाम देने का नियम

अहोम युग में मृत्यु के दिन ही शव को मैदाम में गोर (दफन) नहीं करते थे। इसके लिए लंबे समय की जरूरत होती थी। राजाओं के मैदाम ईंट और कराल से निर्मित किए जाते हैं। कराल ईंट को ईंट से जोड़ने के लिए व्यवहार करते हैं। कराल तैयार होने में वक्त लगता है। मैदाम तैयार होने तक शव को सुरक्षित रखने के लिए एक रासायनिक द्रव में शव को डुबाकर रखते थे। तथ्य के अनुसार, ये द्रव सरसों का तेल या शहद (मधु) थे जिसे 'रह' कहते थे। शव को जिस ताबूत में रखा जाता था उसे 'रुङडाङ' कहते थे। संपूर्ण राज मर्यादा के साथ हल्दी से नहलाकर नए कपड़े, आभूषण से अलंकृत करके शव को रुङडाङ में रखकर रह में डुबोकर मैदाम प्रस्तुत होने तक संरक्षित करके रखते थे।

रुङडाङ या ताबूत उरियाम काष्ठ से तैयार करते थे, इसलिए अहोम लोग कभी भी ये काष्ठ मकानों में इस्तेमाल नहीं करते। शव को रुङडाङ में रखकर घर के भीतर से बाहर मुख्य द्वार से नहीं निकालते थे, दूसरे दरवाजे से निकलते थे। आंगन में रखकर डाम पूजा करके सभी परिवारजन उसे अंतिम श्रद्धांजलि प्रदान करते हैं। इसके बाद जनाजा के लिए तैयार होते हैं। अंतिम यात्रा में राज परिवार, मंत्रीवर्ग और प्रजागण भाग लेते हैं। रुङडाङ को समाधि स्थल तक लुखुरासन और घरफलिया फैद (घराणें) के लोग ही कंधा देते थे। राजमहल से मैदाम स्थल का सफर लंबा होता था। वहाँ तक जाने का अलग रास्ता होता है, उसे 'शव निया आलि' या 'गोमोठा आलि' कहते थे। राजा के शव के साथ उनकी परिचर्या करने वाले लोगों को भी साथ में जिंदा दफनाते थे। वे लोग मानते थे कि मृत्य के बाद भी राजा को सारी सुख-सुविधा का प्रबंध जरूरी है इसलिए सभी प्रयोजनीय सामग्री के साथ परिचारक को भी दफनाने का नियम था।

जिन लोगों को राजा के साथ गोर करना था उन सभी को शव यात्रा में आगे स्थान दिया जाता था। उसके बाद पुरोहित, राजन्यवर्ग के लोग इस यात्रा में शामिल होते हैं। इस यात्रा के दौरान अगर किसी ने न्याय विचार की अपील करनी चाही तो राजा के स्थान पर राजा के साथ गोर करने वाले लोग ही विचार करते हैं। जो राय विचार में दी जाती थी, उसे कोई बदल नहीं सकता था। शवयात्रा जाकर 'दरिका नगर' नामक एक नगर पर रुकती थी। इसे 'शव रखने वाला नगर' भी कहा जाता था। इस शव को तब तक उस नगर में रखते थे जब तक मैदाम के निर्माण संपूर्ण नहीं होता था।

इतिहास के अनुसार, राजा और राजमाता के शव कई दिन या महीनों तक संरक्षित करके रखने की नजीर है। स्वर्गदेउ गदाधर सिंह का 10 महीने, रुद्र सिंह का 70 दिन, प्रताप सिंह की राजमाता का 25 दिन, बरराजा आइकुँवरी फुलेश्वरी देवी का 43 दिन, शिव सिंह का 43 दिन, कमलेश्वर सिंह का शव 17 दिन तक दरिका नगर में संरक्षित करके रखा गया था। मैदाम तैयार होने के बाद फिर से दरिका नगर से शवयात्रा मैदाम स्थल चराईदेव के लिए निकलती है। मैदाम स्थल पर पहुँचकर शव को एक तालाब में नहलाते थे। उस तालाब को 'शव धोने वाला तालाब' कहते थे। फिर पूजा-पाठ करने के बाद उस शव को मैदाम के अंदर ईंट से बनाए गए कक्ष में संपूर्ण राजकीय सुविधों के साथ बिस्तर पर रख दिया जाता था। जीवित अवस्था में वे जो भी वस्तुएँ कार्य-व्यवहार में लाते थे, उनका शव के साथ दफना देने का रिवाज़ था। इसलिए धन-दौलत, सोना, आभूषण के साथ जिंदा आदमी को भी गोर कर दिया जाता था। जिंदा आदमी को राजा के साथ कक्ष में रखकर बाहर से दरवाजा बंद कर देते थे और उसके ऊपर मिट्टी डालकर पूरा कक्ष दफना देते थे। अहोम राजा प्रताप सिंह (1603-1641) के साथ जीवित आदमियों के अलावा हाथी और घोड़ा भी गोर किए गए थे। राजा गदाधर सिंह (1681-1696) के मैदाम में 30 लोगों को गोर किया गया था।

संस्कार

मैदाम में राजा के साथ जिंदा लोगों को दफनाने के कुसंस्कार की चर्चा 17वीं शताब्दी के अंत में अहोम राजदरबार में होने लगी। अहोम युग के श्रेष्ठ राजा रुद्र सिंह (1696-1714) ने बाद में परिचर्या करने वाले जिंदा आदमी को गोर करने का नियम समाप्त कर दिया। बाद में हिंदू धर्म से प्रभावित होकर बरराजा फुलेश्वरी देवी ने शवों को काष्ठ संस्कार करके अस्थि को मैदाम देने का नियम प्रचलित किया।

वर्तमान मैदामों की स्थिति

मैदाम देते समय धन-दौलत राजा या राजपरिवार के सदस्य के साथ गोर करते थे। ये तथ्य चङरुङ फुकन के बुरञ्जी में उल्लेख किया गया है। इन संपदाओं के लालच में मैदामों को लूटा गया। सन् 1626 में मोघल सेनापति मिर जुमला ने अहोम राज्य पर आक्रमण किया। मैदाम के खजाने की प्रथा जानकर खुदाई करके बहुत-सी संपदा लूट ले गया। उसके बाद समय-समय पर लूट-पाट होते रहे। अंत में अंग्रेजों ने भी मैदाम लूटे। मैदामों की जमीनों पर कंपनियों ने कब्जा जमाया था। अभी असम के सिवसागर जिले के चराईदेव में कुछ ही मैदाम पर्यटन के केंद्र हैं।

अहोम स्थापत्य कला के अंतर्गत समाधि के स्थापत्य मैदामों के गुरुत्व अपरिसीम है। अहोम राजत्व के लंबे शासनकाल के बारे में ये मैदाम जीवंत किंवदंती हैं। अहोमों के समन्वय प्रवण मनोभाव के कारण ही आज एक वृहद असमिया जाति एवं सामाजिक गठन का महत कार्य संभव हुआ है।

ज्योति के आलोक में असमिया संस्कृति

ज्ञान के किसी भी अनुशासन में पूर्वपक्ष/परंपराओं, परिप्रेक्ष्य और प्रस्थापनाओं का स्मरण करना उसके स्थापित दायरों का विस्तार करना भी होता है। जिस तरह समाज की विभिन्न संस्थाएँ विगत और समकालीनता के द्वंद्व और संवाद के जरिए अपना उत्तर-जीवन सुनिश्चित करती हैं, उसी तरह विमर्श का लोक भी अपने मूर्धन्यों का स्मरण करके अपना नवीकरण करता रहता है। इसी नवीकरण की प्रक्रिया में असमिया सिनेमा और साहित्य के मूर्धन्य व्यक्तित्व ज्योतिप्रसाद आगरवाला भी हैं।

117 वर्ष पहले जन्मे रूपकुँवर ज्योतिप्रसाद आगरवाला, जिन्हें असम की जनता ने आधुनिक कला, साहित्य, संगीत और संस्कृति के विकास के लिए 'रूपकुँवर' की स्वतःस्फूर्त पदवी से विभूषित कर इतना सम्मान दिया कि उन्हें लोग दूसरा शंकरदेव मानने लगे थे।

असमिया फिल्मों के जनक और बहुमुखी प्रतिभा के धनी रूपकुँवर ज्योतिप्रसाद आगरवाला का जन्म 17 जून, 1903 को डिब्रूगढ़ जिले के तांबुलबाड़ी चाय बागान में हुआ था। उनके पिता का नाम परमानंद आगरवाला तथा माता किरनमोई आगरवाला थीं। इनका परिवार वर्ष 1811 ई. में राजस्थान के मारवाड़ से आकर असम में बस गया था।

बहुत कम लोगों को मालूम है कि 1903 में ही अमेरिका में 'द ग्रेट रॉबरी' नामक फीचर फिल्म का प्रदर्शन हो चुका था। 1927 तक मूक फिल्मों का दौर चलता रहा। इसके बाद बोलपट या टॉकीज फिल्मों का दौर आया। 1927 में ही एलेन क्रॉसलेड ने अपनी फिल्म 'द जाज़ सिंगर' में पहली बार आवाज और संगीत का एक साथ प्रयोग किया था। इसी फिल्म से सवाक् फिल्मों की शुरुआत मानी जाती है। उधर ज्योतिप्रसाद आगरवाला तेजपुर से प्रारंभिक शिक्षा पूरी कर स्वाधीनता आंदोलन में कूद पड़े थे। देशबंधु चित्तरंजन दास द्वारा स्थापित जातीय विद्यापीठ कलकत्ता से प्रवेशिका की परीक्षा पास कर 1926 में 23 वर्ष की आयु में उच्च शिक्षा के लिए इंग्लैंड गए। वहाँ पहुँचकर पहले सात दिनों तक लंदन की सैर की। साहित्य उन्हें अपनी तरफ इतना खींचता था कि वे मिल्टन और शेक्सपियर के समाधि स्थल गए। संस्कृत के उद्भट विद्वान और भारतीय सभ्यता-संस्कार के महान साधक वेरियल कीथ से मिलने वे उनके घर गए।

मनोज मोहन

जन्म : 28 मार्च, 1963; मुजफ्फरपुर, बिहार।

शिक्षा : एम.ए.।

संप्रति : स्वतंत्र लेखन, वर्तमान में सीएसडीएस की पत्रिका 'प्रतिमान : समय समाज संस्कृति' के संपादकीय विभाग से संबद्ध।

प्रकाशन : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समीक्षा व लेख प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 8506014917

ई-मेल : manojmohan2828@gmail.com

वहाँ उन्होंने महात्मा गांधी से भी मुलाकात कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। वहीं एडिनबरा विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया, लेकिन गणित में कमजोर होने के कारण उन्हें अंततः पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी। किंतु, एडिनबरा में रहते हुए उन्होंने सन् 1927 में छह महीने तक फिल्म तकनीक का प्रशिक्षण लिया। अपनी प्रकृति के अनुकूल उनका ध्यान

"सिलचर जेल से बाहर आने के बाद ज्योतिप्रसाद ने अपनी फिल्म पर काम करना शुरू किया। इससे पहले वे कलकत्ता में भी इस दिशा में प्रयास कर चुके थे। वहाँ उन्हें सफलता नहीं मिली। फिर उन्होंने इसे असम में ही बनाने की कोशिश शुरू की, लेकिन यहाँ पर्याप्त साधन उपलब्ध नहीं थे। उन्होंने अपने प्रयास से तेजपुर के पास कलंगनूर क्षेत्र में बालियाजान नदी के पार स्थित अपने भोलागुड़ी चाय बागान में बाँस-लकड़ी-टीन से 'चित्रवन' नाम से अस्थायी तौर पर एक स्टूडियो बनाया।"

संगीत, नाटक और फिल्मों की ओर गया। कुछ दिन इंग्लैंड में और कुछ समय जर्मनी में रहकर उन्होंने फिल्मों का अध्ययन-मनन शुरू किया। वहीं पर उनकी मुलाकात प्रसिद्ध फिल्म निर्माता-निर्देशक हिमांशु राय से हुई। अगले सात महीने वे राय के साथ रहकर उनसे काम सीखते रहे।

चार साल लगातार विदेश में रहने के पश्चात वे तुर्की, बेबीलोन, बगदाद और कराची का भ्रमण करते हुए 1930 में भारत लौटे। तब तक भारत में सवाक् फिल्मों की शुरुआत हो चुकी थी। सवाक् युग की शुरुआत सन् 1931 में आर्देशिर ईरानी की फिल्म 'आलम आरा' से मानी जाती है।

विभिन्न देशों की संस्कृति का अध्ययन करने के बाद उन्होंने असम की संस्कृति पर काम करना शुरू किया। वे बहुआयामी और विलक्षण प्रतिभा के संपन्न व्यक्ति थे। ज्योतिप्रसाद आगरवाला की देश वापसी ऐसे समय में हुई जब असमिया संस्कृति तथा सभ्यता अपने मूल रूप से विच्छिन्न होती जा रही थी। भारत की अन्य भाषाओं में सवाक् फिल्मों का निर्माण होते देख उनके कलाप्रिय मन को ठेस पहुँचती थी, क्योंकि विदेश से फिल्म प्रशिक्षण लेने और हिमांशु राय से फिल्म के गुर सीखने के बावजूद वे अभी तक अपनी किसी फिल्म का निर्माण नहीं कर सके थे।

फिल्म निर्माण के क्षेत्र में कूदने से पहले वे चार सालों तक स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय रहे। सिलचर जेल से बाहर आने के बाद ज्योतिप्रसाद ने अपनी फिल्म पर काम करना शुरू किया। इससे पहले वे कलकत्ता में भी इस दिशा में प्रयास कर चुके थे। वहाँ उन्हें सफलता नहीं मिली। फिर उन्होंने इसे असम में ही बनाने की कोशिश शुरू की, लेकिन यहाँ पर्याप्त साधन उपलब्ध नहीं थे। उन्होंने अपने प्रयास से तेजपुर के पास कलंगनूर क्षेत्र में बालियाजान नदी के पार स्थित अपने भोलागुड़ी चाय बागान में बाँस-लकड़ी-टीन से 'चित्रवन' नाम से अस्थायी तौर पर एक स्टूडियो बनाया। बैनर का नाम रखा—चित्रवन मूवीटोन। उनकी माँ का आग्रह था कि 'सती जयमती' के कथानक पर फिल्म बनाई जाए। पिता की इच्छा अलग थी, वे चाहते थे कि असम में वैष्णव धर्म के प्रवर्तक श्रीमंत शंकरदेव या ज्योतिप्रसाद के लिखे नाटक 'शोणित कुँवरी' पर फिल्म बने। उनका निर्णय असमिया के साहित्य-रसराज लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा द्वारा असमिया इतिहास की महान नायिका जयमती के कथानक पर लिखित नाटक 'जयमती कुँवरी' पर जयमती नाम से फिल्म बनाने के पक्ष में गया। रास्ता आसान न था, उन्होंने फिल्म की पटकथा लिखने में रत्नेश्वर महंत की पुस्तक गदापाणि और जयमती कुँवरी का सहयोग लिया। बेजबरुवा के नाटक की त्रुटियों को दूर किया गया, साथ ही पटकथा तैयार करते समय बांग्ला और हिंदी के प्रभाव से बचते हुए असमियापन पर विशेष ध्यान दिया गया। उन्होंने पात्रों का चयन भी सूझबूझ के साथ किया।

उस समय फिल्मों में महिला किरदार निभाने के लिए अभिनेत्री का मिलना मुश्किल होता था। अभिनेत्री खोजने में एड़ी-चोटी एक

करनी पड़ी। उन्हें लोगों ने लड़की चोर तक कहा। उस समय का समाज इतना दकियानूसी था कि अंततः जब आईदेउ संदिकै ने नायिका का अभिनय करना स्वीकार किया तो उसे आजीवन बहिष्कृत जीवन बिताना पड़ा। भूमिका निभाते हुए जयमती के पति गदापाणि को बङहर देव अर्थात 'हृदय का देवता' कहा तो, उसे सामाजिक मर्यादानुसार आजीवन अविवाहित रहना था क्योंकि कोई भी स्त्री जीवन में एक बार ही किसी को बङहर देव कह सकती है, सो वह फिल्म में बोल चुकी थी। आईदेउ संदिकै और आलम आरा की जुबेदा को फिल्म में काम करने के कारण त्रासद जीवन जीना पड़ा।

जयमती के निर्माता, निर्देशक, संवाद, गीतकार, संगीतकार, कला निर्देशक, नृत्य संयोजन आदि सभी कार्य करने का भार ज्योतिप्रसाद ने स्वयं के कंधों पर रखा। अहोम राजा का प्रासाद बनाने के लिए ज्योतिप्रसाद ने केले के गाछों का उपयोग किया। गाछों के तने

से खंभे बनाए गए और तने के चिकने छिलकों से दीवारें बनाई गईं, सिनेमाई पर्दे पर वह संगमरमर की तरह लगने लगीं। उन्होंने गुवाहाटी के निकट खारघुलि पहाड़ के जंगल में और उसके पास बहती ब्रह्मपुत्र में नौकायन के दृश्यों की शूटिंग की। फिल्म में डालिमी की भूमिका स्वर्गज्योति बरुवा ने निभाई थी। असमिया सिनेमा के पहले नायक बनने का श्रेय फुनुराम बरुवा के नाम से पहचाने जाने वाले परशुराम बरुवा को मिला, जिन्होंने गदापाणि का रोल किया। उन्होंने खुद भी इस फिल्म में अभिनय किया था।

चित्रवन स्टूडियो में 01 जनवरी, 1934 से जयमती फिल्म का पूर्वाभ्यास शुरू हुआ। इसके 15 दिनों बाद यानी 15 जनवरी, 1934 को असमिया पंचांग के अनुसार माघ महीने के पहले दिन उनके संगीतज्ञ पिता परमानंद आगरवाला ने क्लैप देकर मुहुर्त किया। शूटिंग समाप्त होने के पश्चात डबिंग के लिए उन्हें लाहौर जाना पड़ा। डबिंग फैजी साहब के साउंड सिस्टम पर की गई, लेकिन समाप्त होने पर मालूम हुआ कि सिस्टम में खराबी होने के कारण सारे संवाद गायब हो चुके हैं। स्थिति का पता चलने पर ज्योतिप्रसाद ने हिम्मत कर 30-35 कलाकारों की डबिंग अपनी आवाज में की—स्त्री और पुरुष दोनों ही पात्रों की। उस समय तक रि-रिकार्डिंग की सुविधा न थी।

लगभग डेढ़ साल की मेहनत के बाद जयमती फिल्म का प्रथम प्रदर्शन कलकत्ता के रौनक महल में 10 मार्च, 1935 को किया गया। प्रीमियर शो का उद्‌घाटन साहित्यकार लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा ने किया। हिंदी और बांग्ला फिल्म की नामचीन हस्तियाँ वहाँ उपस्थित थीं—पृथ्वीराज कपूर, प्रमथेश बरुवा, कुंदनलाल सहगल, हिमांशु राय, देवकी बोस, फणि मजूमदार, धीरेन गांगुली, भोला बरुवा आदि। तमाम लोगों ने ज्योतिप्रसाद की मेहनत की सराहना की। प्रथमेश बरुवा ने तकनीक की ओर ध्यान दिलाया। कुंदनलाल सहगल ने कहा कि उन्हें रूपकुँवर की दूसरी कृति का बेसब्री से इंतजार रहेगा। दुर्भाग्य यह है कि रूपकुँवर ज्योतिप्रसाद आगरवाला की ऐतिहासिक महत्व की अमर कृति जयमती का प्रिंट अब विनष्ट हो चुका है। असमिया संगीत के मूर्धन्य संगीतकार भूपेन हजारिका द्वारा निर्मित वृत्तचित्र रूपकुँवर ज्योतिप्रसाद आरु जयमती भी धीरे-धीरे नष्ट होने के कगार पर है। उन्होंने 1939 में असमिया फिल्म संसार को एक और फिल्म 'इंद्रमालती', उपहार में दी। ज्योतिप्रसाद ने इन दोनों फिल्मों के माध्यम से एक ओर असमिया संस्कृति को एक अपूर्वता से नवाजा, वहीं उन्होंने असम के पारिवारिक संबंधों और देशप्रेम की भावना को विशेष महत्व दिया।

ज्योतिप्रसाद आधुनिक असमिया नाटक के भी जनक थे। काव्य सुलभ कल्पना के साथ बौद्धिकता का सम्मिश्रण, वास्तविक जीवन की कठोरता में शिल्पकला का महत्व तथा अंतर्मुखी

जीवन-जिज्ञासा की दृष्टि से उनके नाटक निश्चय ही असाधारण माने जाते हैं। उनके नाटक—शोणित कुँवरी, कारेङर लिगिरी और रूपालिम रोमांटिक नाटक माने जाते हैं। बाद के दोनों नाटक—लभिता और खनिकर में कल्पनाशीलता से अधिक गतिशीलता पर ध्यान दिया गया।

कवि-हृदय रूपकुँवर ज्योतिप्रसाद आगरवाला ने कला-साहित्य की सेवा करते हुए 17 जनवरी, 1951 को तेजपुर, असम में अंतिम साँस ली। वे कैंसरग्रस्त थे। उनकी पुण्यतिथि असम में शिल्पी दिवस के रूप में मनाई जाती है।

हिंदी-असमिया भाषा के समन्वयक कमल नारायण देव

असमिया साहित्य-संस्कृति के विकास में असम के कई हिंदीभाषियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इनमें कई लोगों ने हिंदी और असमिया दोनों के साहित्य-संस्कृति के समन्वय सेतु के रूप में अपनी अहम् भूमिका निभाई। इनमें से कुछ लोग असम में ही रह गए तो कुछ लोग कुछ समय के बाद अपने प्रदेश वापस लौट गए, लेकिन उनका रचनात्मक कार्य असम में हिंदी-असमिया भाषा के समन्वय सेतु के रूप में मील का पत्थर साबित हुआ। ऐसे ही महापुरुषों में कमल नारायण देव का नाम शामिल है। कमल नारायण शुरुआती दौर में असम में हिंदी का प्रचार-प्रसार करते थे, लेकिन आगे चलकर उन्होंने असमिया साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए भरपूर रचनात्मक कार्य किया। उनके अथक प्रयास से असमिया काव्यांदोलन में एक क्रांति-सी आ गई और नवोदित कवियों को एक नया मार्गदर्शक मिल गया। वे अत्यंत कम समय में ही यहाँ की संस्कृति में रच-बस गए। उनके रचनात्मक कार्यों से प्रभावित होकर असमिया विद्वानों ने उन्हें देव की उपाधि से नवाजा, जिसके चलते प्रकारांतर में वे कमल नारायण देव कहलाने लगे।

कमल नारायण देव बिहार प्रांत के सारण (छपरा) जिले के निवासी थे। वे प्राच्य-प्रतीच्य के महान विद्वान थे। उनकी ज्ञान परिधि में अंग्रेजी से अधिक वेद-वेदांत, पुराण-भागवत आदि सम्यक् रूप से शामिल थे। बाबा राघव दास की योजना के अनुसार 1938 ई. में असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी द्वारा लगाए गए प्रथम हिंदी शिक्षक शिविर में वे अध्यापक बनकर आए थे। जब वे शिविर के संचालक बने तो उन्होंने हिंदी और असमिया दोनों भाषाओं में सामंजस्य स्थापित करने का स्तुत्य प्रयत्न किया। कमल नारायण गुवाहाटी के उजान बाजार में असम टाइप के घर में भाड़े में रहते थे, जहाँ अब 'मेघ मल्हार' नामक अपार्टमेंट बन चुका है। उनके मकान मालिक का नाम धीरू भुयाँ था। चूँकि वे जनेऊ धारण करते थे इसलिए कुछ विद्वान उन्हें ब्राह्मण जाति का बताते हैं, लेकिन वे कायस्थ जाति के थे क्योंकि नारायण उपाधि बिहार के कायस्थों की होती है और कायस्थ भी जनेऊ धारण करते हैं। उन्होंने कामरूप जिले (वर्तमान में कामरूप ग्रामीण) के रामपुर गाँव की पुत्री नलिनीबाला दास से विवाह किया। नलिनीबाला दास से उन्हें एक पुत्री-रत्न की प्राप्ति हुई, जिसका नाम मणि था।

लेकिन कमल नारायण के गुवाहाटी आगमन को रेखांकित करते हुए चित्र महंत ने अपने आलेख 'एक अविस्मरणीय व्यक्तित्व : कमल नारायण देव' में लिखा है–सन् 1938-39 की बात है। घनघोर तमसाछन्न युद्ध, विध्वस्त सारा संसार, कहीं भी शांति का अवशेष नहीं था। पराधीन भारत इस स्थिति में भी शांति की खोज में

सौमित्रम्

जन्म : 09 दिसंबर, 1967, पूर्णियाँ, बिहार।

संप्रति : वरिष्ठ उपसंपादक, हिंदी दैनिक 'पूर्वांचल प्रहरी'।

लेखन व प्रकाशन : गज़ल, गीत, कविता (छंदबद्ध व नई शैली) प्रकाशित। अब तक इनकी संबंधों के निशान (कविता संग्रह-2013), संवेदनाओं की बैसाखी (कविता संग्रह-2015), असम के शहीद पत्रकार (असम के शहीद 26 पत्रकारों का जीवनवृत्त-2016) तथा नावक के तीर (कविता संग्रह-2017) पुस्तकें प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 8638291082

ई-मेल : pplowerassam@gmail.com

भटक रहा था। ऐसी ही स्थिति में 1939 के आस-पास गुवाहाटी में एक युवक का पदार्पण हुआ। उस युवक का नाम क्या था, किस मुकाम से आया था, माता-पिता कौन थे, किसी को पता नहीं था। शायद उत्तर भारत के किसी प्रांत का निवासी था और संभवतः किसी क्रांतिकारी संगठन से उसका संपर्क था, जिसके चलते वह मारा-मारा

> **“ कमल नारायण ने अत्यंत मनोयोग से असमिया भाषा-संस्कृति की सेवा की। उन्होंने कुछ ही दिनों में असमिया में निपुणता हासिल कर ली और 1943 में ‘जयंती’ जैसी प्रतिष्ठित असमिया पत्रिका का संपादन चक्रेश्वर भट्टाचार्य के साथ मिलकर करने लगे। भवानंद दत्त भी इनके साथ हो लिए। यही लोग जयंती के त्रिमूर्ति कहलाए। कमल नारायण उजान बाजार स्थित अपने भाड़े के घर से ही जयंती का प्रकाशन करते थे। कमल नारायण देव असमिया प्रगतिवादी धारा के अग्रदूत साबित हुए। असमिया साहित्य और संस्कृति को हिंदी जगत में प्रचारित एवं प्रसारित करने का आरंभिक श्रेय कमल नारायण देव को ही जाता है। ”**

फिर रहा था। गुवाहाटी में ट्रेन से उतरने के बाद उसने सोचा—प्लेटफार्म पर ही रात बिताएँ क्या? फिर सोचा—पुलिस, मिलिट्री खचाखच भरे हुए हैं, इसलिए यहाँ रहना मुनासिब नहीं होगा। स्टेशन से निकलकर वह पान बाजार की ओर बढ़ा। वह एक स्थान पर ठहर गया। जिस जगह पर वह खड़ा था, उसके सामने एक हवेली थी। हवेली का फाटक खुला हुआ था, सो वह धीरे-धीरे हवेली के अंदर चला गया। दूर-दूर तक असम टाइप के छोटे-बड़े मकान थे, पास ही एक छोटी-सी झोंपड़ी थी, जो अतिथिशाला थी। उसने अपनी पोटली से एक कपड़ा निकाला और अतिथिगृह के बरामदे में ही सो गया। सुबह जब आँख खुली तो उसके सामने एक महिला खड़ी थी। युवक अकबकाकर खड़ा हो गया और उसने हाथ जोड़कर महिला को प्रणाम किया। महिला ने नाम-पता पूछा तो युवक ने हड़बड़ाकर उत्तर दिया।

उक्त हवेली डॉ. हरेकृष्ण दास की थी और उक्त महिला उनकी पत्नी हेमप्रभा दास थीं। एक दिन डॉ. दास ने युवक से कहा, “देखो बेटा, यह समय बहुत खतरे का है। इस तरह बेरोजगार पड़े रहोगे तो पुलिस तुम पर शक करेगी। तुम कुछ काम-धंधे में लग जाओ। मैं असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का अध्यक्ष हूँ। तुम तो अच्छी हिंदी जानते हो, चाहो तो तुम्हें समिति के काम में लगा दूँ।” कमल नारायण ने हाँ कर दिया और असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति में लगन से काम करने लगे। वही कमल नारायण असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के प्रथम मंत्री बने।

कमल नारायण के आगमन से असम में हिंदी प्रचार कार्य को एक नई दिशा मिली। उन्होंने असमिया समाज के हर खेमे के लोगों को राष्ट्रभाषा के प्रति आकृष्ट किया था। गोपीनाथ बरदलै तो असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के संस्थापक के रूप में पहले से ही थे। अब असम के राजनेता, समाज सेवक, साहित्यकार तथा संस्कृति सेवी राष्ट्रभाषा की महान यात्रा में शामिल होने लगे। इसके फलस्वरूप असमिया साहित्य के कर्णधारों यथा सूर्य कुमार भुयाँ, देवकांत बरुवा, भवानंद दत्त, चक्रेश्वर भट्टाचार्य, अजित बरुवा, केशव महंत, निरूपमा बरगोहाईं, कीर्तिनाथ हाजरिका, नवकांत बरुवा, हेम बरुवा, अनेक राजनीतिज्ञ, सामाजिक कार्यकर्ता तथा संस्कृति सेवी कलाकारों को कमल नारायण ने हिंदी के माध्यम से समेट लिया और यहाँ हिंदी का प्रचार-प्रसार दिन दूना-रात चौगुना बढ़ गया, लेकिन बाद में हिंदी प्रचार का उद्देश्य जैसे उनके जीवन से ही गायब हो गया।

कमल नारायण ने अत्यंत मनोयोग से असमिया भाषा-संस्कृति की सेवा की। उन्होंने कुछ ही दिनों में असमिया में निपुणता हासिल कर ली और 1943 में ‘जयंती’ जैसी प्रतिष्ठित असमिया पत्रिका का संपादन चक्रेश्वर भट्टाचार्य के साथ मिलकर करने लगे। भवानंद दत्त भी इनके साथ हो लिए। यही लोग जयंती के त्रिमूर्ति कहलाए। कमल नारायण उजान बाजार स्थित अपने भाड़े के घर से ही जयंती का प्रकाशन करते थे। कमल नारायण देव असमिया प्रगतिवादी धारा के

अग्रदूत साबित हुए। असमिया साहित्य और संस्कृति को हिंदी जगत में प्रचारित एवं प्रसारित करने का आरंभिक श्रेय कमल नारायण देव को ही जाता है। उनके संपादकत्व में जयंती के अधिकांश अंक द्विभाषी हुआ करते थे। अपनी अकूत प्रतिभा के कारण उन्होंने न केवल हिंदी, बल्कि असमिया काव्यांदोलन को भी एक नई दिशा प्रदान की। उन्होंने असमिया काव्य विधा तथा काव्य शैली को संपूर्ण रूप से बदल दिया यानी पाश्चात्य में अब तक बहु प्रचारित काव्य शैली को असमिया काव्य में व्यवहृत किया। कमल नारायण देव के समय जयंती के लिए पर्याप्त सामग्री लेखकों से नहीं मिल पा रही थी। अतः पत्रिका को चलाने के लिए वे असमिया में सत्यकाम तथा हिंदी में देवनांगप्रिय के छद्म नामों से लिखा करते थे। जयंती के संपादन के अतिरिक्त वे वीणा, माधुरी जैसी राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त पत्रिकाओं में भी लिखा करते थे।

असमिया साहित्य के इतिहास में जयंती पत्रिका की विशेष व महत्वपूर्ण भूमिका रही है। असमिया के प्रख्यात साहित्यकार हेम बरुवा ने आधुनिक असमिया साहित्य में नई धारा के परिवर्तन स्वरूप जयंती पत्रिका के बारे में लिखा है—'असमिया में बाँही-जोनाकी युग से लेकर आवाहन युग तक व्यक्ति भावना वाली कविताएँ लिखी जा रही थीं। परंतु जयंती पत्रिका ने इस धारा को दूसरी ओर मोड़ दिया। कवियों की दृष्टि कल्पना से उतरकर यथार्थ (वास्तविकता) की ओर मुड़ गई और असमिया कविता को नई भावभूमि मिल गई। अमूल्य बरुवा की आलोडन सृष्टि करने वाली वेश्या, कुकुर आदि कविताएँ जयंती पत्रिका में ही प्रकाशित हुई थीं, जिससे प्रेरित होकर नए कवि नई ढंग की कविताएँ लिखने लगे।

नवारुण वर्मा लिखते हैं कि जयंती पत्रिका ने उन कवियों को आगे लाने का काम किया, जिन्हें परंपरावादी संपादकों के संपादकत्व में निकलने वाली पत्रिकाएँ ठुकरा चुकी थीं। अमूल्य बरुवा, हेम बरुवा, नवकांत बरुवा सहित नई विचारधारा के अनेक कवियों की कविताओं को प्रकाशित कर जयंती ने असमिया साहित्य में प्रगतिवादी विचारधारा को ऐसा व्यापक बना दिया, जिससे ऐसे कवियों को नई संजीवनी प्राप्त हुई।

कमल नारायण देव कवि, सुचिंतक, संपादक के साथ-साथ एक कुशल निबंधकार भी थे। उनका चिंतन-दर्शन और साहित्य कर्म अत्यंत प्रभावशाली था। उन्होंने नलिनीबाला देवी, विहगीकवि रघुनाथ चौधरी एवं बरगीत जैसे उत्कृष्ट निबंधों की भी रचना की है। बरगीत असमिया गीति साहित्य की अमूल्य निधि है। उक्त निबंध में निबंधकार ने सर्वभारतीय वैष्णव भक्तिधारा के संदर्भ में बरगीतों के महत्व पर प्रकाश डाला है। बरगीत के कवियों की साधना सर्वभारतीय समन्वय-सामंजस्य की साधना है। उनका बरगीत निबंध एक विश्लेषणात्मक निबंध है, जिसमें बरगीतों के नामकरण, उद्देश्य, उनकी सामाजिक उपयोगिता, उनके दार्शनिक महत्व एवं धार्मिक दृष्टि का सम्यक् निरूपण किया गया है। उन्होंने महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव एवं माधवदेव के बरगीतों में मौलिक अंतर रेखांकित करते हुए उसकी लोकप्रियता के कारणों की गंभीर व्याख्या प्रस्तुत की है। उनके निबंधों की शैली सरल, संप्रेषणीय एवं बोधगम्य है। सीधे-सादे शब्दों में गंभीर से गंभीर बात को स्पष्ट कर देने की क्षमता कमल नारायण देव में थी। उन्होंने डॉ. विरिंची कुमार बरुवा की 'हिस्ट्री ऑफ असमीज लिटरेचर' का हिंदी अनुवाद 'असमिया साहित्य की रूपरेखा' शीर्षक से किया है। यह पुस्तक असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा प्रकाशित है। असम तथा पूर्वांचलीय नृत्य पर दिल्ली से प्रकाशित साप्ताहिक हिंदुस्तान पत्रिका में कई महीने तक एक निबंध धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ।

कमल नारायण देव मात्र सात-आठ वर्ष असम में रहकर संपूर्ण रूप से असमिया समाज-संस्कृति में घुल-मिल गए थे, लेकिन उनकी जीवनकथा अब तक रहस्यावृत ही है। आकस्मिक रूप से 23 सितंबर, 1946 को हिंदी-असमिया समन्वय के इस महान अग्रदूत के देहावसान से हिंदी-असमिया समन्वय चेतना को जो नुकसान हुआ, उसकी क्षतिपूर्ति अब तक नहीं हो पाई है।

स्वतंत्रता पूर्व असमिया समाज की एक झलक

लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ की आत्मकथा के आधार पर

अनुवाद– **हरीश जैन**

आत्मकथा किसी व्यक्ति द्वारा अपने जीवन का स्वयं लिखा हुआ लेखा-जोखा होता है। हरकांता मजिंदर बरुआ को असमिया साहित्य का पहला आत्मकथाकार माना जाता है। हालाँकि उनकी आत्मकथा, आत्मकथा से ज्यादा डायरी लेखन की तरह थी। जहाँ वे अपनी दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों को कलमबद्ध करते थे (असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिब्रित्ता, सत्येन्द्र नाथ सरमा, पृष्ठ 293)। उनके बाद हेमचंद्र बरुआ नाम के एक अन्य लेखक ने अपनी आत्मकथा लिखी, जो कि अधूरी थी। फिर असमिया समाज के एक प्रतिष्ठित विद्वान लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ ने 'मोर जीवन सोवरन' नाम से अपनी आत्मकथा लिखी, जिसे पहली असमिया आत्मकथा माना जा सकता है।

डॉ. कल्पना सरमा कालिता

डॉ. कल्पना सरमा कालिता कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी, असम में असमिया विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर हैं। उनके कई लेख विभिन्न जर्नल, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी दो पुस्तकें–प्रबंध पल्लव (2009) व असोमिया लेखिकार गोलपत शिल्प चेतना (2016) भी प्रकाशित हो चुकी हैं। उन्होंने कई पुस्तकों का संपादन भी किया है।

संपर्क : मोबाइल– 9864059113

ई-मेल : kalpana.sarma2@gmail.com

इस तरह लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ की यह आत्मकथा, असमिया आत्मकथात्मक साहित्य के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखती है। उनकी यह आत्मकथा मूल रूप से 'बाही' नामक असमिया पत्रिका में दिखाई दी, जिसके संपादक बेजबरुआ स्वयं थे। बाद में, सन् 1944 में इसी आत्मकथा को माधव चन्द्र बेजबरुआ ने एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया। इस आत्मकथा के बारे में बात करें तो यह एक बहुत समृद्ध और ज्ञानवर्धक आत्मकथा है। इसमें बेजबरुआ के समय के समाज को इतनी अच्छी तरह से परिलक्षित किया गया है कि आज की पीढ़ी के लिए यह एक ऐतिहासिक सूचनात्मक रिपोर्ट/दस्तावेज़ के रूप में कार्य करता है। बेजबरुआ के परिवार, शिक्षा, पेशेवर जीवन, विवाह आदि के विस्तृत वर्णन के अलावा, उनकी आत्मकथा में उनके समय की सामाजिक व्यवस्थाओं, संस्कारों और रीति-रिवाजों, मान्यताओं का भी विस्तृत वर्णन है। पुस्तक के अनुसार, बेजबरुआ का जीवन मूल रूप से असमिया, उड़िया और बंगाली, तीनों समाजों से जुड़ा हुआ था। इस लेख में केवल असमिया समाज पर ध्यान केंद्रित किया गया है क्योंकि बेजबरुआ ने अपना समय असम के सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक वातावरण में बिताया था जिसका उनके बहुमुखी व्यक्तित्व को आकार देने में बहुत बड़ा योगदान था।

विचार, विश्वास, पूर्वाग्रह, रीति और संस्कार, समय के साथ-साथ बदलते रहते हैं। बेजबरुआ के समय और आज के समय के बीच लगभग 150 वर्षों का अंतर है। समय में इस अंतर के कारण हर पहलू में निश्चित रूप से बहुत अंतर आया है। मैंने 21वीं सदी की नई पीढ़ी के लिए इस विषय का चयन किया ताकि वे स्वतंत्रता से पहले के समाज और बेजबरुआ की आत्मकथा में दर्शाए गए समय से परिचित हो पाएँ।

लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ का जन्म 1864 में हुआ और उनकी मृत्यु 1938 में। यह काल भारत में ब्रिटिश शासन का काल था। उनकी

आत्मकथा के जरिये हम स्वतंत्रता-पूर्व युग के असमिया समाज का प्रतिबिंब देख सकते हैं। सिवसागर में बेजबरुआ के शुरुआती दिनों में उनका असम के सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक जीवन के साथ परिचय हुआ। बेजबरुआ ने अपनी आत्मकथा में इसका उल्लेख किया है। यह सच है कि असमिया लोगों के अंधविश्वासों, बुरे रिवाजों और अन्य कमजोरियों ने समुदाय की प्रगति को बहुत प्रभावित किया।

उस युग के दौरान, असमिया लोग परिवहन के लिए बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी, हाथी, नाव, जहाज आदि का उपयोग किया करते थे। बेजबरुआ का जन्म एक नाव में हुआ था, उनके जन्म की कहानी उस समय के परिवहन से संबंधित इस तथ्य का प्रमाण है। पहले के समय में असमिया पुरुषों की छोटी उम्र में शादी करने के किस्से कम ही मिलते थे। बल्कि जब तक पुरुष आर्थिक रूप से स्वतंत्र न हो जाए, तब तक वह विवाह का फैसला नहीं करता था, लेकिन समय के साथ पड़ोसी राज्यों, जैसे—पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, बिहार इत्यादि के प्रभाव के कारण इस प्रणाली में बदलाव आए। नीचे दिए गए उदाहरण की तरह बेजबरुआ ने इन परिवर्तनों का उल्लेख अपनी आत्मकथा में किया है—

"लेकिन शायद 'भारी बंगाली ज्वार' के प्रभाव के कारण या असमिया सज्जनों की स्थिति में बदलाव के कारण, आजकल यह पुराना 'स्वस्थ/गुणकारी' रिवाज अपनी लोकप्रियता खो रहा है और बंगाल की ही तरह यहाँ भी अब कम उम्र में शादी कर लड़की के माता-पिता से पैसे/दहेज लेने की बुरी प्रथा अपनी जगह बना रही है। इसे असमिया घरानों में बंगाली साड़ियों के हमले के जैसा ही एक आत्मविषयक बदलाव कहा जा सकता है।" (बेजबरुआ रचनावली, 'मोर जीवन सोवरन' पृष्ठ 7-8)

उन दिनों, औपचारिक शिक्षा का बहुत महत्व था। शिक्षा की शुरुआत के लिए एक शुभ दिन का चयन किया जाता था और उस दिन कई धार्मिक अनुष्ठान किए जाते थे। इसी संबंध में बेजबरुआ के घर पर 'पूजा' के लिए एक ब्राह्मण को बुलाया गया और एक स्वर्ण पुष्प (सोने की धातु से बना फूल) 'कमलाबाड़ी थान' (पूजाघर) में चढ़ाया गया था। उन दिनों विद्यार्थियों को कड़ी मेहनत करनी पड़ती थी। इसका अनुमान बेजबरुआ के इन शब्दों से लगाया जा सकता है—

"पहले मेरे दादाजी ने मुझे केले के पत्ते पर लिखने की और केले के पत्ते को लिखने योग्य बनाने की तकनीक सिखाई। लकड़ी से कलम तैयार करना, हाथ भर गौमूत्र और खाना बनाने वाले मिट्टी के बरतन के बाहर लगी कालिख से 'मोहि' या स्याही तैयार करना, स्याही रखने के लिए बाँस की लकड़ी से 'मोइलम' (मोहि/स्याही रखने वाला पात्र) बनाना, और मोइलम को दीवार पर लटकाने के लिए उसके ऊपर एक रस्सी बाँधना आदि, मुझे मेरे दादाजी श्री रबीनाथ ने सिखाया।" (बेजबरुआ रचनावली, पृष्ठ संख्या 10)

असम में बंगाली समाज के प्रभावों के कारण सन् 1838 में ब्रिटिश सरकार ने असम के स्कूलों, कॉलेजों, कार्यालयों और अदालतों से असमिया भाषा के उपयोग को खत्म कर बंगाली भाषा का उपयोग प्रारंभ किया। बंगाली भाषा का यह उपयोग सन् 1873 तक जारी रहा। बेजबरुआ उस समय नौ साल के थे। उन्हें भी अपनी औपचारिक शिक्षा का आरंभ बंगाली भाषा में करना पड़ा, जो उन्हें बिलकुल पसंद नहीं आया।

"उन दिनों शैक्षिक अधिकारियों की अर्थहीन समझ के कारण असम के स्कूलों में बंगाली भाषा सिखाई जाती थी। इस तरह असमिया भाषा की बुरी तरह उपेक्षा की गई थी। यह असम के बच्चों को उनकी माँ के दूध से वंचित कर उनके हाथ में दूध की प्लास्टिक वाली बोतल थमा देने जैसा था। इसका मतलब है कि वे 'काल काक, भाल नाक' और 'खिली खाई मिली जबी' सिखाते हुए वे बंगाली भाषा को असमिया भाषा की जगह देने की कोशिश कर रहे थे।" (बेजबरुआ रचनावली, पृष्ठ संख्या 10)

उस समय के असमिया लोगों का मानना था कि अगर वे बंगाली लोगों द्वारा बनाए गए भोजन को स्वीकारेंगे तो उन्हें उनकी जाति/उनके वर्ण में सम्मान नहीं मिलेगा। इसीलिए जब बेजबरुआ के दोनों भाई, गोबिन्दा बेजबरुआ और गोलाप बेजबरुआ अपनी पढ़ाई के लिए कलकत्ता गए, तब उनके पिता ने उनके साथ शशधर नाम के एक ब्राह्मण को रसोइये के रूप में भेजा था। असमिया लोगों के लिए मुर्गा और मुर्गी के अंडे खाना वर्जित था। उन दिनों मछली और कछुए भारी तादाद में हुआ करते थे। एक बार गुवाहाटी से सिवसागर तक की अपनी यात्रा के दौरान बेजबरुआ परिवार ने ब्रह्मपुत्र नदी में बहुत सारे कछुए देखे और फिर उन्होंने कछुए के अंडे खाने का आनंद लिया। मिसिंग समुदाय के एक व्यक्ति ने एक बार उन्हें एक बड़ा-सा कछुआ भेंट में दिया था। उच्च जाति के हिंदू परिवारों की स्त्रियों को छोड़कर, समाज के लगभग सभी लोग हिरण का मांस खाते थे।

अगर एक ब्राह्मण बालक अपने जनेऊ संस्कार के बाद किसी नीची जाति के परिवार के घर में भोजन कर ले तो इसे जाति के अनादर के रूप में देखा जाता था। जनेऊ संस्कार के विशेष दिन से पहले, ब्राह्मण बालक के करीबी निम्न जाति के लोग उसे दोपहर या रात के खाने के लिए अपने घर पर आमंत्रित किया करते थे। बेजबरुआ ने भी ऐसे निमंत्रणों का आनंद लिया था।

"मेरे जनेऊ संस्कार के चार-पाँच दिन पहले, मेरे पहचान के गैर-ब्राह्मण परिवारों द्वारा चावल और अन्य पकवान खाने के लिए मुझे आमंत्रित किया गया था और मैं भी खुशी-खुशी खुद की तथा उनकी संतुष्टि के लिए उनके निमंत्रण को स्वीकार लेता था। 'संस्कारात् द्विज उच्यते', अर्थात एक बार वो पवित्र धागा (जनेऊ) धारण कर लेने के बाद मैं 'द्विज' बन जाऊँगा और फिर मैं मेरे गैर-ब्राह्मण मित्रों के घर में भोजन करने की स्वतंत्रता खो दूँगा। मेरी पदोन्नति ब्राह्मण वर्ग में हो जाएगी। बाहरी तौर पर न सही, लेकिन अपने गैर-ब्राह्मण मित्रों के साथ भोजन करने जैसे आनंद का त्याग कर मुझे उनसे दूरी बनानी होगी। वे लोग जो मुझे अपने करीबी लोगों में गिनते हैं, उन्होंने मुझे मेरे पूरी तरह ब्राह्मण बनने के सौभाग्य, या

कहें दुर्भाग्य की प्राप्ति से पहले भोजन के लिए आमंत्रित कर अपनी इच्छा पूरी करने का/खुद को संतुष्ट करने का प्रयास किया।" (बेजबरुआ रचनावली, पृष्ठ संख्या 24-25)

उन दिनों, लड़के बहुत छोटी उम्र से ही धोती पहनना शुरू कर देते थे। समाज के कुछ प्रतिष्ठित लोग मुगा रेशम से बनी धोती पहनते थे। तोयाधर सरमा, जो बेजबरुआ को संस्कृत पढ़ाते थे, वे मुगा रेशम से बनी धोती पहनते थे। अभिजात वर्ग के लोग यूरोपीय पोशाक पहनते थे, व्यवसायी भोलानाथ बरुआ उन्हीं में से एक थे। ब्राह्मण लड़के 'तिकोनी' (चोटी या शिखा) रखते थे। ब्राह्मणों के दस संस्कारों में 'कर्णभेद', अर्थात कान छेदना भी एक आम प्रथा थी। बेजबरुआ के जनेऊ संस्कार के दौरान 'कर्णभेद' की रस्म भी की गई थी। उनके शब्दों में—

"सीसे की डंडी से लेकर बाँस की डंडी और सोने की 'लोंगकेरू' (बालियाँ) तक, सभी ने मेरे कान के बड़े से छेद में उपद्रव मचा देने वाला प्रवेश किया।" (बेजबरुआ रचनावली, पृष्ठ संख्या 24)

इसका मतलब है कि उस दौर में महिलाएँ और पुरुष, दोनों ही आभूषण पहनते थे। उन दिनों, असमिया लोग बंगाली संगीत, पोशाक और उनकी जीवन-शैली को असमिया शैली से बेहतर मानते थे। असम के युवा, बंगाली तौर-तरीकों का अनुसरण करते थे।

"बंगाली भाषा, बंगाली गाने, बंगाली लोगों का बाल बनाने का ढंग, बंगाली तरीके से कुर्ता पहनना, असमिया लोग हर चीज में बंगाली लोगों का अनुकरण करते हैं। युवा पीढ़ी का यह विश्वास है कि बंगाली हर चीज में उनसे बेहतर हैं, उन्हें किसी बीमारी की तरह प्रभावित करने लगा है। यह बीमारी इतनी फैल गई कि असमिया सत्रों (धार्मिक स्थल) के मुखिया श्री गोसाई महंता द्वारा सत्रों के बेहद खूबसूरत और शानदार नाटक 'अनकिया भओनस' का स्थान एक-दूसरे नाटक को दे दिया गया जिसमें गलत बंगाली भाषा का प्रयोग किया गया था।" (बेजबरुआ रचनावली, पृष्ठ संख्या 23)

ऐसा करने से उन्होंने गर्व महसूस किया और उन्हें विश्वास हो गया कि दर्शक इस नए नाटक को देखकर बहुत प्रसन्न और संतुष्ट हो जाएँगे। असमिया युवाओं ने 'अनकिया भओनस' की उपेक्षा की और उन दिनों वे बंगाली 'यात्रा गान' के शौकीन थे। असमिया लोग इस हद तक बंगालियों की नकल करने लगे कि वे अपने नाम के बाद बंगाली उपनाम 'दास' और 'दत्ता' का इस्तेमाल करने लगे।

बेजबरुआ के समय की अधिकांश महिलाएँ निरक्षर थीं। शिक्षित महिलाओं द्वारा पत्र लिखना कदाचार माना जाता था, फिर वह पत्र चाहे उनके पति के लिए ही क्यों न हो। बेजबरुआ की भाभी अपने पति के लिए पत्र लिखती थीं और गुप्त रूप से डाक द्वारा भिजवाने के लिए वह पत्र लक्ष्मीकांत को देती थीं। उच्च जाति के हिंदू परिवारों में लड़कियों की शादी बचपन में ही कर दी जाती थी। कई लड़कियाँ तो अपने ससुराल जाने से पहले ही विधवा हो जाती थीं और फिर अपने माता-पिता के घर ही रहा करती थीं। बेजबरुआ ने लिखा है—

"मेरे पिता की चार बेटियाँ थीं। सबसे छोटी अपने ससुराल जाने से पहले ही विधवा हो गई और हमारे साथ रहा करती थी।" (बेजबरुआ रचनावली, पृष्ठ संख्या 33)

लड़की की शादी हो जाने के बाद, उसका अपने माता-पिता के घर खाना खाने का कोई अधिकार नहीं था। लड़का भी अपने ससुराल में बना भोजन नहीं खा सकता था। उन दिनों ब्राह्मण लड़कों के लिए चिकित्सा या उपचार संबंधी शिक्षा ग्रहण करना वर्जित था—

"क्योंकि अगर कोई चिकित्सा या उपचार संबंधी शिक्षा लेता है तो उसे शव का चीर-फाड़ करना पड़ता है और ऐसा करना हिंदू जाति के लिए, विशेष रूप से एक ब्राह्मण के लिए अपमानजनक होगा। यह धारणा असम में बहुत प्रख्यात थी।" (बेजबरुआ रचनावली, पृष्ठ संख्या 62)

इसीलिए, जब बेजबरुआ के पिता दीनानाथ बेजबरुआ को पता चला कि लक्ष्मीनाथ के भाई गोलाप चन्द्र बेजबरुआ ने कलकत्ता में गुप्त रूप से चिकित्सा का अध्ययन शुरू कर दिया है, तब वे बहुत हैरान हुए और उन्होंने अपने बेटे को सिवसागर वापस बुलाकर उसकी शुद्धि करवाई।

पुराने असमिया समाज में, अभिजात वर्ग के लोगों द्वारा नौकर रखने का प्रचलन था। मालिक और नौकर के बीच बहुत अच्छे संबंध हुआ करते थे। नौकरों को परिवार का एक अटूट हिस्सा माना जाता था। बेजबरुआ के घर में मथन घर्गिरी और घिन्लागी बाई नाम के दो नौकर अपने परिवार के साथ बेजबरुआ के परिवार की ही तरह रहा करते थे। उनकी बड़ी बेटी 'आहिनी' छोटे लक्ष्मीनाथ की देखभाल किया करती थीं। जगन्नाथ पुरी, मथुरा, वृंदावन और अन्य तीर्थ स्थानों की यात्रा के लिए बेजबरुआ के माता-पिता घिन्लागी बाई को भी अपने साथ ले जाया करते थे। बेजबरुआ के समय में, असम आर्थिक तंगी के दौर से गुजर रहा था और असम को इससे बचाने के लिए कई असमिया युवाओं ने अपना खुद का व्यवसाय करना शुरू कर दिया। इसी कारणवश बेजबरुआ ने भी अपनी नौकरी छोड़कर लकड़ियाँ बेचना शुरू कर दिया था।

उस समय के असमिया लोग, भक्तिधर्म तथा शंकरदेव और माधवदेव की महान साहित्यिक रचनाओं द्वारा प्रबुद्धित थे। बेजबरुआ भी उनकी रचनाओं से बहुत प्रेरित थे और इसकी झलक उनकी आत्मकथा में कई जगह देखने को मिल जाती है।

'मोर जीवन सोवरन' में बेजबरुआ ने अंतिम दिनों के समकालीन असमिया समाज की झलक के साथ-साथ, अपने जीवन की लंबी यात्रा को दर्शाया। सामाजिक रीति-रिवाजों और धार्मिक सुधारों के अलावा, यह बेजबरुआ की देशभक्ति, अपनी पहली भाषा के लिए उनका प्यार, उनकी साहित्यिक यात्रा, एक व्यापारी के रूप में उनके जीवन और उनके पारिवारिक जीवन को दर्शाता है। उनके कार्यों और उनके आकर्षक व्यक्तित्व ने हर असमिया मन में हमेशा आत्मसम्मान, आत्मविश्वास और प्रेरणा के दीये जलाए हैं।

माधव कौशिक : साहित्य का क्षेत्र अपरिमित है

माधव कौशिक जी का जन्म 01 नवंबर, 1954 को भिवानी, हरियाणा में हुआ। वे वर्तमान में साहित्य अकादेमी के उपाध्यक्ष हैं। वह सांस्कृतिक राष्ट्रवादी साहित्यकार भी हैं। उन्होंने साहित्य के विभिन्न विधाओं जैसे—कविता, गीत, ग़ज़ल, कहानी, आलोचना, बाल साहित्य आदि में अपनी बहुमुखी प्रतिभा का प्रदर्शन करते हुए कई पुस्तकें लिखीं। ग़ज़ल में इनकी विशेष रुचि है। उन्हें उनके लेखन कार्य के लिए हंस कविता सम्मान, सहस्त्राब्दी सम्मान (विश्व हिंदी सम्मेलन, नई दिल्ली), राजभाषा रत्न (हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग), बाबू बालमुकुंद गुप्त सम्मान (हरियाणा साहित्य अकादमी), महाकवि सूरदास सम्मान (हरियाणा साहित्य अकादमी) जैसे अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है।

साहित्य से आपका पहला परिचय कब और कैसे हुआ, क्या आपके परिवार में पहले से साहित्य में किसी का जुड़ाव था?

मेरे पिता जी स्कूल के प्रधानाध्यापक थे और वह उर्दू के बड़े विद्वान थे। हमारे घर का वातावरण बड़ा साहित्यिक था। जितनी भी बड़ी पत्रिकाएँ हैं, कल्याण से लेकर बच्चों की पत्रिकाएँ—चंदा मामा तक जो उस समय छपती थीं, सभी पत्रिकाएँ घर में आती थीं और उनके साथ बराबर हमारा संबंध बना रहता था। बचपन से ही माता-पिता से संस्कार प्राप्त हुआ। यह परिवार का पहला एक तरह का साहित्यिक वातावरण जिसने मुझे संस्कार भी दिया और समझ भी। पिता जी के मित्र या घर में जो भी लोग आते थे, बहुत ही पढ़े-लिखे लोग तथा रोचक ख़याल के थे। विशेष बात यह है कि मेरे घर में हिंदी, उर्दू और संस्कृत तीनों भाषाओं के जानकार थे। एक तरह से बचपन के संस्कारों से कॉलेज तक मेरी एक अच्छी समझ साहित्य के प्रति बन चुकी थी।

आपकी नजर में अच्छी रचना का मापदंड क्या होता है? इसका पैमाना कौन तय करता है, कवि या पाठक?

साहित्य में ऐसा कोई पैरामीटर तय नहीं किया जा सकता है और यह साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है। विज्ञान में जो भी चीज होती है, वह निश्चित होती है। फॉर्मूले निश्चित हैं, विज्ञान के निर्णय भी निश्चित हैं, किंतु साहित्य एक ऐसा क्षेत्र है जिसकी अनिश्चितता में ही उसकी गरिमा और उसकी महिमा छिपी हुई है। इसलिए कभी भी आप पैरामीटर तय नहीं कर सकते कि यह अच्छा है, यह बुरा है। हाँ, एक बात यह है कि जो अच्छा साहित्य होता है, उसका लौकिक आग्रह है कि वह मानवता, करुणा और मानव समाज के कल्याण से जुड़ा होता है। मोटे तौर पर ये इसके लक्षण होते हैं। जो रचना समाज को दशा दे जैसा कि मैं यह मानता हूँ कि साहित्य समाज का दर्पण है, तो दीपक भी है, वह उसका रास्ता भी प्रशस्त करती है। किंतु आप किसी तरह से भी साहित्य के सारे मानक एक साथ तय नहीं कर सकते हैं क्योंकि समय के साथ साहित्य के स्वरूप भी बदलते हैं, साहित्य के सरोकार भी बदलते हैं और साहित्य के पढ़ने और विश्लेषण करने के तरीके भी बदलते हैं। यही कारण है कि जब हम साहित्य का अनुशीलन करते हैं तो आप देखते हैं कि कितने सारे आंदोलन होते हैं। कभी उसमें मार्क्सवाद, कभी समाजवाद और कभी अस्तित्ववाद आता है और एक तरह से हम यह मानते चलते हैं कि ज्यों-ज्यों मानव समाज आगे बढ़ेगा, साहित्य का स्वरूप भी बदलेगा। समय की परिवर्तनशीलता साहित्य में परिलक्षित होती है। कई बार तो साहित्य समाज के परिवर्तन की भी भूमिका निभाता है। बड़ा साहित्य समाज को परिवर्तित करने का, दृष्टकोण को बदलने का भी एक बड़ा साधन है। इतिहास गवाह है कि अच्छे साहित्य ने समाज को बहुत कुछ दिया है, यदि साहित्यकार नहीं होंगे तो संभवतः मानव समाज जो यहाँ तक पहुँचने में समर्थ हुआ है, नहीं होता।

क्या जरूरी है कि कविता का कोई अर्थ भी हो?

प्रत्येक कविता का कोई-न-कोई अर्थ तो होता ही है। निरर्थक तो साहित्य होता ही नहीं है। कई बार रचनाकार अपने मंतव्य को स्पष्ट नहीं कर पाता, जिससे अस्पष्टता आ जाती है। बहुत सारी चीजें समाज और पाठक के समझ में भी नहीं आतीं, लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं कि कोई भी रचना जो लिखी गई है, वह निरर्थक है। उसका कहीं-न-कहीं कोई अर्थ तो होता ही है। लिखने वाला किस संवेदनशीलता के स्तर तक जाकर जिस अनुभव की ऊँचाई पर जाकर लिखता है, कई बार पाठक वहाँ तक नहीं पहुँच पाता तो रचना अस्पष्ट लगती है। मुक्तिबोध के बारे में कहा गया कि उनकी रचनाएँ समझ में नहीं आतीं। रचनाकार जान-बूझकर अपनी कविता में कई बार कल्पना का इस्तेमाल करता है। बड़ी सच्चाई, बड़े यथार्थ को रूपायित करने के लिए कई बार कवियों ने कल्पना का प्रयोग किया है। यह भी यथार्थ को व्यक्त करने का एक तरीका है। जिन कवियों की रचनाओं में रहस्यवाद का थोड़ा भी पुट होता है वे रचनाएँ कई बार पाठकों को समझ नहीं आतीं। पाठक कहता है इसका अर्थ नहीं होता, किंतु उसका अर्थ स्पष्ट होते हुए भी दूरगामी होता है। कई बार रचनाकार अपने अर्थों को छिपाकर भी कहता है। बड़ी सच्चाई को प्रकट करने के लिए अच्छा रचनाकार यथार्थ को गुप्त रखता है।

आपकी ग़ज़लों में समाज और समय का तीखा यथार्थ है, जबकि आपके खंड काव्यों में मिथकीय

सपना तिवारी

शिक्षा : एम.ए. (हिंदी), अनुवाद में डिप्लोमा।

संप्रति : हिंदू महाविद्यालय में अभिव्यक्ति भित्ति पत्रिका में संपादक और सह-संपादक पद पर दो वर्ष कार्य, पुस्तक समीक्षा, विश्व पुस्तक मेला में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास में संवाददाता का कार्य।

संपर्क : मोबाइल— 9654783212

ई-मेल : tiwarisapna1954@gmail.com

पौराणिकता। आप रचना में इन तत्वों का समावेश और संतुलन कैसे करते हैं?

सच बात तो यह है कि जो कविता की विधा है, उस विधा की विशिष्टता उसके कथ्य को तय करती है। गज़ल एक ऐसी विधा है जो जनसामान्य से सीधे जुड़ती है। आप देखेंगे कि मेरी गज़लों की जो भाषा है, वह बिलकुल हिंदुस्तानी भाषा है, आम आदमी की भाषा है जो सड़क पर, घरों में, बाजारों में बोली जाती है क्योंकि यह उस विधा की माँग है। किंतु मैं जब खंडकाव्य लिखता हूँ तो उन खंडकाव्यों की, जिनकी पृष्ठभूमि पौराणिक है, उनके प्रश्न भी बहुत बड़े हैं। खंडकाव्य की जो विधा है, उसी के अनुरूप हमें भाषा को चुनना बहुत अधिक जरूरी होता है। वह भाषा बहुत अधिक प्रांजल भी है क्योंकि खंडकाव्य की जो रचना है, वह रचना सामान्य जन की अपेक्षा प्रबुद्ध पाठक के लिए है। उसमें जो बौद्धिक तत्व है, उसे कई बार मैं बौद्धिक प्रखरता कहता हूँ। खंडकाव्य एक ऐसी विधा है जो बौद्धिक प्रखरता की माँग करता है। दूसरा यह कि मैं पौराणिक संदर्भ जरूर लेता हूँ, किंतु मेरा मंतव्य आज के समाज की बुद्धियों को समझना और सुलझाना ही है। उन संदर्भों का सिर्फ सहारा लेता हूँ। बाकी कोशिश यही रहती है कि समाज में जो भी परिवर्तन हो रहे हैं, विशेष तौर पर जिस प्रकार का बाजारवाद, उत्तर आधुनिकतावाद, भूमंडलीयकरण का जो दबाव है, उसने हमारे ताने-बाने को किस तरह से तोड़ा है। हमारी राजनीति का किस प्रकार पतन हुआ है असली मकसद दिखाने का वही है। दूसरा मेरे नवगीत की जो भाषा है, उसमें भी शुद्ध हिंदी का अधिक इस्तेमाल है। उसकी जो बिंब प्रधानता है, उसका जो प्रतीक विधान है, वह उस नवगीत विधा की माँग भी है। तो जिस विधा की जैसी विशेषता है जैसी उसकी माँग है, मैं उसी के अनुरूप उसका कथ्य तय करता हूँ। उसी के अनुरूप उसकी भाषा तय करता हूँ। यही वजह है कि मेरी कविताओं की जो भाषा है, खंड काव्य की भाषा अलग है तो गज़ल की अलग, कविता की अलग है, नवगीत की अलग, छंद कविता की अलग, तो छंदमुक्त कविता की अलग है। यह उन विधाओं की विशिष्टताओं ने ऐसा करने के लिए मुझे बाध्य किया है।

वर्तमान में कविता की क्या स्थिति है? गज़ल और कविता के बीच का फासला पहले से बढ़ा है या कम हुआ है?

इन दिनों में बहुत अच्छी बातें भी हुई हैं। पिछले कुछ वर्षों में हिंदी का जो साहित्य समाज है, वह पुराने दुराग्रहों और पूर्वाग्रहों से मुक्त हुआ है। अब साहित्य पढ़ने वालों को यह समझ आ गया है कि विधाएँ साहित्य की होती हैं, भाषाओं की नहीं। अब गज़ल या कविता की जो विधाएँ हैं, हम इनको यह नहीं कह सकते कि यह जापानी की विधा है कि कोई उर्दू की विधा है, अंग्रेजी की विधा है। विधाएँ साहित्य की होती हैं, भाषाओं की नहीं होती। यह बात आज हमारे समाज के समझ में आ गई है और जब से यह बात पाठकों को समझ आई है तब से पुराने दुराग्रह भी समाप्त हो गए हैं। अब कविता और गज़ल के बीच में कोई दूरी नहीं है, वह भी कविता की एक विधा है। सामान्यतः कुछ दशक पूर्व छंद की कविता और मुक्तछंद कविता का बड़ा विरोध किया जाता था, किंतु अब कविता के संपूर्ण परिदृश्य को समझने के लिए हमें कविता, गज़ल, नवगीत, छंद की कविता और मुक्तछंद इन सबको साथ में रखकर इसका मूल्यांकन करना होगा और आजकल यह काम हो भी रहा है—यह बहुत शुभ संकेत है।

आप हिंदी के रचनाकार हैं, लेकिन विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य की वर्तमान स्थिति से भली-भाँति परिचित हैं, अकादेमी का उपाध्यक्ष होने के नाते भी। तो आज आप भारतीय साहित्य को किस दशा में महसूस करते हैं?

सच बात तो यह है कि इस समय संपूर्ण भारतीय भाषाओं का जो विकास और उसकी प्रगति है, वह अभूतपूर्व हुई है। संचार क्रांति के युग ने हमारी भाषाओं को बहुत अधिक स्थान दिया है। हमारी भाषाएँ पूरे संसार में अब अपना स्थान रखती हैं। संचार क्रांति के इस युग में खासतौर से इंटरनेट के युग में जितने भी अभिव्यक्ति के नए माध्यम आए हैं, उन्होंने हमारे संपूर्ण भारतीय साहित्य को विश्व साहित्य के समकक्ष लाकर खड़ा कर दिया है। यह हमारे लिए एक बहुत बड़ी उपलब्धि का काम है। साहित्य अकादेमी ने 24 भाषाओं को मान्यताएँ दी है। इनके अतिरिक्त भी सैकड़ों ऐसी बोलियाँ हैं जिनमें साहित्य की रचना हुई है और साहित्य अकादेमी उनके रचनाकारों को भी सम्मान देता है। उनके साहित्य को भी हम बहुत गंभीरता से लेते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इस समय भारत की सारी भाषाएँ और उनका साहित्य निरंतर समृद्ध होता जा रहा है और उसकी समृद्धि में सबसे बड़ा योगदान साहित्य अकादेमी का है क्योंकि अनुवाद के माध्यम से हमने सारे भारतीय भाषाओं को, साहित्य को एक सूत्र में पिरोकर रख दिया है। अब कोई भी बड़ी कृति चाहे वह तमिल, तेलुगू, बांग्ला, उड़िया किसी भी भाषा में हो, वह कुछ समय बाद भारत की सभी भाषाओं में अनूदित हो जाती है। साहित्य अकादेमी का एक उद्देश्य है—'बेशक भारत की बहुत सारी भाषाएँ हैं, लेकिन हमारा साहित्य एक है।' राधाकृष्णन ने कहा है कि 'Indian litrature is one but it is written in many laguages.' अर्थात यद्यपि भारत का साहित्य एक है, लेकिन यह बहुत-सी भाषाओं में लिखा जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक भारतीय चाहे वह कोई भी भाषा बोलता हो, कहीं पर भी रहता हो, उसकी संवेदना और सोच एक जैसी है, उसका चिंतन एक जैसा है। उसकी जो सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है जो हमारी मिश्रित संस्कृति है जिसे हम 'गंगा-जमुनी तहजीब' कहते हैं, इस विविधता के होते हुए भी हम सोच के स्तर पर एक ही स्तर के हैं। यह जो कालखंड है जिसमें सूचना क्रांति ने हमारे लिए नए वातायन खोले हैं, मैं भारतीय भाषाओं और भारतीय साहित्यकारों का स्वर्ण युग कह सकता हूँ।

आपकी नजर में वर्तमान में किन विषयों पर लिखा जाना चाहिए?

साहित्य का क्षेत्र अपरिमित है। पूरे ब्रह्मांड के हर चीज पर साहित्य लिखा जा सकता है। कई बार ऐसा होता है कि कुछ क्षेत्र ज्यादा प्रमुख हो जाते हैं, जैसे—इस समय वैश्विक चिंतन या ग्लोबल विलेज की हमारी एक संकल्पना है। हालाँकि यह पहले से है, वसुधैव कुटुंबकम को हम मानने वाले हैं। ऐसे में कुछ क्षेत्र हैं जिन पर पहले कभी काम नहीं हुआ। खासतौर पर मैं तीन क्षेत्रों पर जिक्र करना चाहूँगा। समाज के वे तबके जो हाशिए पर रहे थे, उनके साहित्य को भी पूरा स्थान मिलना चाहिए। साहित्य अकादेमी दलित लेखन, आदिवासी लेखन और इसी तरह से ट्रांसजेंडर लेखन को भी लेकर सामने आ रहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि समाज के वे वर्ग, समाज के वे तबके जो अभी तक उपेक्षित रहे हैं, उनका चिंतन उनकी संवेदना और उनके साहित्य को भी समान रूप से उद्घाटित होना चाहिए। इन वर्षों में हमने आदिवासी लेखन, दलित चिंतन, ट्रांसजेंडर लेखन पर भी बहुत काम किया है। आने वाले समय में जो साहित्य का लेखन और भाषाएँ उपेक्षित हैं, वे बोलियाँ जिनकी कोई लिपियाँ भी नहीं बनी है, हम उनका भी प्रलेखन कर रहे हैं। आने वाले वर्षों में जो उपेक्षित वर्गों का साहित्य है, वे भी मुख्य धारा में शामिल हो जाएँगे।

मुक्ति

सुकुमार बड़े आदमी का बेटा है। उसके परिवार में खाने-पहनने की कोई कमी नहीं। स्वभाव से भी वह बुद्धिमान है, पर लिखने-पढ़ने में उसका मन नहीं लगता। 14 साल का होने के बावजूद वह अंग्रेजी स्कूल की चौथी कक्षा में ही था। पिता कहा करते, "अरे पढ़-पढ़", पर सुकुमार सामने किताब खोले न जाने क्या-क्या जमीन-आसमान सोचता रहता। कहाँ किस पेड़ में पके आम लगे हैं, अमरूद के फलों से कौन-सा पेड़ लदा हुआ है, घर के छप्पर के किस कोने में बर्रे ने कहाँ खोंता लगाया है, उस खोंते को तोड़कर उसके अंडों को बंसी का चारा बना किस पोखरे में पेठिया मछलियाँ पकड़ी जा सकेंगी, किस पेड़ पर चिड़िया के घोंसले से पक्षी शिशु पकड़कर पालना होगा, घरेलू बिल्ली, कुत्ते, हिरण के बच्चों के साथ कैसे-कैसे खेलना-कूदना है, ऐसे विषयों से ही सुकुमार का दिमाग भरा रहता। उसमें स्कूली पाठ्य-पुस्तक के लिए जगह कम ही थी। सुबह माँ का बनाया गरमागरम भात पेट में डालकर वह स्कूल जाता तो जरूर, पर कक्षा में सवालों का जवाब न दे पाने के कारण शिक्षक की गाली सुन, सजा भुगतकर घर लौटता। माँ बड़े प्यार से उसके लिए विशेष रूप से भैंस के गाढ़े दूध में भिगोए कोमल चावल का नाश्ता बना रखती। नाश्ता कर, स्कूल में मिली सारी डाँट-डपट और सजाएँ भूलकर वह साथी लड़कों के साथ पहले जैसे ही खेल-कूद में रम जाता। एक दिन शिक्षक ने उसके पिता से यह शिकायत की कि 'लिखने-पढ़ने में सुकुमार की दिलचस्पी बिलकुल नहीं है। आप जरा ध्यान रखें।' पिता ने उसे पकड़कर छड़ी से काफी पीटा। पिटकर वह नाराज हो घर से भागा और किसी की नजरों में पड़े बगैर इमली के एक पेड़ पर चढ़ गया। उस पेड़ की दो मोटी डालियाँ जहाँ जुड़ी थीं, वहाँ टिककर सो गया। दिन भर वहीं रहा। यहाँ तक कि रात को भी घर नहीं लौटा। माँ उसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते परेशान हो गई, 'अरे मेरा बेटा, तू कहाँ चला गया।' कहती हुई रोने लगी। पिता के मन में भी बड़ा दुख हुआ। वे पछताते हुए कहने लगे, 'ओ सुकुमार बेटे, तू कहाँ है, आ जा रे, आज से तुझे मैं कभी नहीं मारूँगा।' कहते-कहते चिंता से विकल हो काफी रात गए सो गए।

दूसरे दिन भूख-प्यास से विकल सुकुमार पेड़ से उतरा और माँ के पास पहुँचा। माँ ने बेटे को झपटकर बाँहों में भर लिया। आँसू बहाती हुई प्यार भरी फटकार भी लगाई। फिर नहला-धुलाकर अच्छी तरह से खाना खिलाया। पिता ने भी प्यार भरे शब्दों से उसे समझाया-बुझाया। उन्हें भी बेटे के आने पर चैन आया।

सुकुमार के पिता पुराने विचारों वाले थे। बेटे को सावधानी से किस राह ले चलने पर पढ़ाई में उसका दिल लगेगा, वही तरीका उन्हें मालूम न था। वे तो सिर्फ इतना ही जानते थे कि बेटे को स्कूल में शुल्क देकर पढ़ा रहे हैं तो स्कूल के अध्यापक ही उसे जल्दी ही सर्वविद्याविशारद बना देंगे। उन्हें तो यह पता न था कि आजकल के स्कूल पहले जमाने के विद्यार्थी को पवित्र विद्या-दान देने वाले विद्यालय नहीं रहे। वे तो कुर्सी, मेज, बेंच, घड़ी, चौकीदार आदि से विभूषित एवं गुरु-शिष्य की आंतरिकता शून्य क्षणिक संबंधों का निर्मम वर्ग लेने वाले कारखाने भर हैं। वहाँ तो ऐसी व्यवस्था होती है, जिसमें छात्रों की मानसिक उत्तम वृत्तियाँ विकसित होने के बजाय पिस जाती हैं, जैसे चक्की में गेहूँ-चावल पिस जाते हैं। इसी कारण उस

लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ

18 नवंबर, 1868–26 मार्च, 1938

उनका जन्म असम के डिब्रूगढ़ जिले में हुआ था। वे असमिया भाषा के सबसे बड़े साहित्यकार, नाटककार थे। उन्होंने व्यंग्य और हास्य रचनाएँ कीं। उनकी सेवाओं के लिए उन्हें 'साहित्य रथी' की उपाधि से सम्मानित किया गया था। कविता, नाटक, गल्प, उपन्यास, निबंध, रम्यरचना, समालोचना, प्रहसन, जीवनी, आत्मजीवनी, शिशुसाहित्य, इतिहास अध्ययन, सांवादिकता आदि दृष्टियों से बेजबरुवा का योगदान अमूल्य है। 1889 में 'जोनाकी' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया। उन्होंने दो वैष्णव संतों शंकरदेव और माधव की जीवनियाँ लिखीं।

दिन जब उन्हें बेटे के पढ़ने-लिखने की कमियों के साथ-साथ पढ़ाई में भी दिलचस्पी न रहने के बारे में पता चला तो वे हताश हो सुकुमार को ही सारे दोषों का उत्तरदायी मान, उसे निर्ममता से पीटा था। दिन-रात का दुविधाग्रस्त संधिकाल सबके लिए भयावह होता है। दिन-रात के संधिकाल में ही नरसिंह द्वारा हिरण्यकशिपु का विनाश हुआ था। पुरानी सभ्यता या असभ्यता और नई सभ्यता या असभ्यता के बीच के संधिकाल में दूर-दृष्टि न होने के कारण ही इस सज्जन को ऐसे मानसिक संकट का सामना करना पड़ा था। संक्षेप में बात इतनी-सी ही है।

उनके दो बेटे थे। पहला था सुकुमार का बड़ा भाई देवकुमार और दूसरा यह सुकुमार। देवकुमार कलकत्ता में रहकर पढ़-लिखकर डिब्रूगढ़ में वकालत कर रहा था। प्रसिद्धि की वजह से उसकी आय और सम्मान भी अच्छा था। अपने उस बेटे के मान-यश और प्रभाव से माँ-बाप दोनों अपने को स्वाभाविक रूप से अत्यधिक गौरवान्वित समझते थे। किसी सज्जन से मिलते ही पिता अपने बड़े बेटे की प्रशंसा की फुलझड़ियाँ छोड़ने लगते थे। उनके लिए तो जरूर वह सूर्योदय जैसा ही था। वकील बेटे का भी माँ-बाप पर असीम प्रभाव था और बात-बात में अपने उस प्रभाव को प्रकट करने में वह किसी तरह की कोताही नहीं करता था। वह छह महीने में या साल में एक बार घर आता। बड़े भाई आने वाले हैं, ऐसा समाचार पाते ही सुकुमार खुशी के मारे उछलने-कूदने लगता। पर बड़े भाई के घर आ जाने पर उसके सामने खड़ा नहीं रह पाता क्योंकि यह निश्चित रहता कि बड़े भाई से पहले संबोधन के रूप में उसे गालियाँ और फटकार ही मिलने वाले हैं। एक बार ऐसी ही स्थिति में माँ ने बड़े बेटे से कहा था, "तेरा यह छोटा भाई तेरे आने की खबर पाकर खुशी के मारे कैसा नाच रहा था, पर आते ही तू तो उसे इस तरह से गालियाँ देने लगा है, तेरे लिए ऐसा करना क्या उचित है?"

माँ को बड़े बेटे ने जवाब दिया, "तुम्हीं लोगों ने तो सुकुमार का दिमाग खा डाला है। प्यार करते-करते उसे बिलकुल बिगाड़ दिया है। इतना 'धंड्डा' हो गया, पर पढ़ता-लिखता नहीं। कुछ दिनों में उसे या तो भैंस-चरवाहा बनना पड़ेगा या लोगों के घरों में सेंध मारनी होगी। आगे इसे खाना कहाँ से

मिलेगा?" बड़े बेटे की जबान से यह कठोर वचन और निर्मम मंतव्य सुन माँ आँसू बहाती वहाँ से हट गई थी। फिर प्रकृतित्थ हो बेटे के पास आने में उसे काफी समय लगा था।

उस बार दुर्गा पूजा की छुट्टी में वकील बेटा घर आया था। उसने दृढ़ता से माँ-बाप से कहा, "इस बार मैं इस बैल को अपने साथ लेता जाऊँगा और अपनी देख-रेख में रखकर पढ़ाऊँगा। तुम लोग इसे यहाँ रखकर इसका 'इहकाल-परकाल' बर्बाद कर दोगे। उसके कपड़े-लत्ते गठरी में बाँधकर मेरे साथ दे देना। मुझे कल ही जाना है।" यह प्रचंड आदेश सुनकर माँ की आँखों में आँसुओं की धारा बहने लगी। पिता ने भी काफी 'ना-नुकर' करने के बाद आखिर बेटे का वह आदेश मान लेने का निर्णय किया। उन दोनों का निर्णय ऐसा होगा, सुकुमार ने सपने में भी यह बात न सोची थी। उसका जी तड़प उठा था, गला सूख गया था, पर उसने देख लिया कि अब उसके लिए कोई और राह है ही नहीं। इस बार बड़े भाई के कठोर अनुशासन में रहकर उसे पढ़ना-लिखना सीखने के लिए यहाँ से जाना ही पड़ेगा। अतः लाचार होकर इस नई व्यवस्था के सम्मुख उसे हथियार डाल देने का तय किया। वह तुरंत इमली, आम, कटहल के पेड़ों, बड़े तालाब, फुलवारी, खुले आकाश, फैले मैदान, उड़ती तितलियों और पालतू पक्षी, हिरण, घास चरने वाली गाय, घोड़े के साथ खेलने-दौड़ने वाले साथियों आदि सबसे वेदना भरे हृदय और दृढ़ मानस से विदा ले, अपने उन परम आत्मीय-स्वजनों को छोड़कर विदेश जाने को तैयार हो गया। उन दिनों दूर की जगहों में आना-जाना विदेश यात्रा ही था।

सुकुमार को साथ ले देवकुमार अब माँ-बाप को प्रणाम कर विदा ले रहा था, माँ ने सुकुमार के होठों को चूमकर कहा, "बेटे, तू अपने बड़े भैया की बात मानकर चलना, मेरे लाल और खूब मन लगाकर पढ़ना।" और बड़े बेटे के चेहरे को हाथ से सहलाकर कहा, "बेटे, तू इस पर ज्यादा कड़ाई न करना, वह बहुत धीरे-धीरे ही पढ़ेगा, भोला लड़का है। एक ही बार में उस पर ज्यादा सख्ती न बरतना बेटे।" कहते-कहते उसने आँचल से आँसू पोंछे। माँ की बात सुन बड़े बेटे ने हँसकर कहा, "बस, बस, उसके बारे में तुम्हें और कुछ भी सोचने की जरूरत नहीं। उसे शह दे-देकर तो जैसा करना था, कर ही डाला, अब रहने दो।"

डिब्रूगढ़ ले जाकर बड़े भाई ने अंग्रेजी स्कूल में सुकुमार का दाखिला करवा दिया

> **सुकुमार की इच्छा के विरुद्ध कठोरता के कारण उसका स्वभाव विद्रोही हो उठा। तेज बुद्धि वाले सुकुमार की बुद्धि जल्दी ही थककर कुंद-सी हो गई। सुकुमार दिन भर किताब खोले पढ़ता ही रहता, पर उसके दिमाग में कुछ भी नहीं ठहरता था। फलस्वरूप बड़े भाई का शासन, प्रहार और कटुवचन दिन-ब-दिन कठोर से कठोर होने लगे। उधर सुकुमार की बुद्धि-वृत्ति, स्मृति और पाठ ग्रहण का सामर्थ्य दिनों-दिन उसी तरह घटने लगा।**

और सुबह-शाम वह खुद उसकी पढ़ाई पर नजर रखने लगा। खुले आकाश में उड़ने वाला पक्षी अब पिंजड़े में बंद हो गया, मानो सुकुमार की छाती पर कठोर अनुशासन की चट्टान पड़ी। विद्रोही न बन, सुकुमार ने इस शासन को स्वीकार कर लिया क्योंकि पढ़ने-लिखने में अपनी असमर्थता हेतु अब उसके मन में खुद ही 'धिक्कार' भाव जगा था। उसका बड़ा भाई बड़े निर्मम-स्वभाव का था, ऐसी बात नहीं। परंतु उसने सोचा था, भाई को कुछ दिन कठोर शासन में रखकर जल्दी ही विद्वान बना, अपने माँ-बाप और दूसरे लोगों को भी बिलकुल विस्मित कर देगा। परंतु उसके कठोर और विवेकहीन शासन का फल जल्द ही फलने लगा। सुकुमार की इच्छा के विरुद्ध कठोरता के कारण उसका स्वभाव विद्रोही हो उठा। तेज बुद्धि वाले सुकुमार की बुद्धि जल्दी ही थककर कुंद-सी हो गई। सुकुमार दिन भर किताब खोले पढ़ता ही रहता, पर उसके दिमाग में कुछ भी नहीं ठहरता था। फलस्वरूप, बड़े भाई का शासन, प्रहार और कटुवचन दिन-ब-दिन कठोर से कठोर होने लगे। उधर सुकुमार की बुद्धि-वृत्ति, स्मृति और पाठ ग्रहण का सामर्थ्य दिनों-दिन उसी तरह घटने लगा।

एक दिन शाम को बड़े भाई ने सुकुमार की पढ़ाई की जाँच की, देखा कि वह तो किसी भी बात का जवाब ठीक से नहीं दे पाता और तो और उसने पहले जो कुछ पढ़ा था, वे भी उसके मन से गायब हो गए हैं। गुस्से के मारे, उसने उसे काफी पीटा और गाली-गलौज करते हुए थककर गुस्से के मारे यह कहता हुआ उठ गया कि 'तू हमारे वंश का कलंक है। तुझे अपना भाई कहकर लोगों के सामने परिचय देने में भी मुझे शर्म आती है। तुझे जल्द ही मैं माँ के यहाँ भेज दूँगा। वह माँ तुझे प्यार से पाल-पोस बड़ा करे। इसके बाद दूसरों के गाय-भैंस की चरवाही कर या किसी की जूठन साफकर अपना गुजारा करना।' भाई की इस फटकार से सुकुमार बिलकुल मौन और जड़-सा हो गया।

रात को नौ बजे उसकी भाभी ने उसे खाना खाने को बुलाया, तो उसने धीमी आवाज में कहा, "भाभी, आज मैं खाना नहीं खाऊँगा। मेरी तबीयत अच्छी नहीं है।"

"सुकुमार खाना खाने को नहीं आ रहा," सुनकर बड़ा भाई उठ आया और उसे फटकारता हुआ, खाना खाने का हुक्म दिया। तब सुकुमार ने बड़ी ही वेदना भरे स्वर से कहा, "भैया, मेरी तबीयत सचमुच खराब है, मैं खाना नहीं खा सकता।" भाई ने सुकुमार के शरीर पर हाथ रखकर देखा, वह बहुत ज्यादा तप रहा था।

सात दिन हो गए, सुकुमार का बुखार उतरा नहीं। तेज बुखार में वह बड़बड़ाने लगा था। जिले के नामी डॉक्टर से बड़ा भाई उसका इलाज करवा रहा था, पर उसकी बीमारी के बारे में माता-पिता को खबर नहीं दी थी। आठवें दिन डॉक्टर के सुझाव से सुकुमार के बुखार की खबर उसने तार से पिता को भेजी। यह खबर पाते ही माँ-बाप दोनों व्याकुल हो उठे। तार से ही उनके बीच खबरों का आदान-प्रदान होने लगा। पर वे डिब्रूगढ़ जल्द पहुँच सकें, इसका कोई साधन नहीं था। अर्ध-बेहोशी में सुकुमार की जबान से लगातार ये बातें सुनाई दे रही थीं, 'माँ तुम आ गईं? मेरे वे पालतू पक्षी और दूसरे जीव-जंतु कैसे हैं? वे मुझे खोजते हैं क्या? मैं यहाँ से जाकर उनके साथ फिर खेलूँगा। माँ, मैं पढ़ूँगा, तुम चिंता न करना। मैं पढ़ता-लिखता नहीं इस बात से भैया नाराज हैं। मैं पढ़ूँगा, पढ़कर बड़ा आदमी बनूँगा। उफ भैया, मुझे और मत मारो। मैं अब अपना पाठ जरूर याद रखूँगा। मैं अच्छा लड़का बनूँगा। मेरे लिए तुम्हें अब शर्मिंदा नहीं होना पड़ेगा।'

और बीमार होने के 14वें दिन सुकुमार के प्राण-पंछी उड़ गए, उसे हमेशा के लिए मुक्ति मिल गई।

(नगेन सैकिया द्वारा संकलित, नवारुण वर्मा द्वारा अनूदित और राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से प्रकाशित 'बेजबरुआ की चुनी हुई रचनाएँ' पुस्तक से साभार)

पूर्वोत्तर भारतीय समाज, इतिहास, साहित्य, संस्कृति व कला-आधारित सार्थक पुस्तकें

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत सुदूर भारतीय परिवेश के उल्लेखनीय समाज, इतिहास, साहित्य, कला, संस्कृति आदि के संरक्षण-संवर्धन की दिशा में नित्य नए प्रकाशनों के द्वारा पाठकों को सस्ते दर पर बेहतरीन पठनीय पुस्तकें प्रदान करता रहता है। इस दृष्टि से न्यास की उपस्थिति बेहद सराहनीय और अनुकरणीय है। न्यास ने संपूर्ण भारत के प्रति इसी सकारात्मक रुख का सदा परिचय दिया है। पूर्वोत्तर भारतीय समाज के साहित्य, इतिहास, कला, संस्कृति आदि पर आधारित कई महत्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन इसी मान्यता का परिणाम है। राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो पूर्वोत्तर भारत कई उल्लेखनीय हस्तियों की भूमि रहा है, किंतु उन पर प्रकाशित सामग्री नगण्यप्राय है। न्यास ने इस कमी को दूर करने का लगातार प्रयास किया है और इस दिशा में आज भी सक्रिय है। न्यास की पूर्वोत्तर भारत संबंधी कुछ ऐसे ही महत्वपूर्ण प्रकाशनों की संक्षिप्त जानकारी इस आलेख में देने की कोशिश है।

डॉ. रमेश तिवारी

हिंदी भाषा-साहित्य में एम.ए., एम.फिल., पी-एच.डी.। दिल्ली विश्वविद्यालय के विभिन्न महाविद्यालयों और एन.सी.ई.आर.टी. दिल्ली के क्षेत्रीय केंद्र क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल में सहायक प्राध्यापक पद पर कार्य। हिंदी भाषा-साहित्य अध्ययन, चिंतन-मनन एवं लेखन में विशेष रुचि। हिंदी व्यंग्य एवं भाषा शिक्षण-प्रशिक्षण के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य।

संपर्क: मोबाइल–9599456515, 9868722444

ई-मेल : vyangyarth@gmail.com

पूर्वोत्तर भारत की विभूतियाँ

लेखक : **जगमल सिंह**

पृष्ठ : 122, मूल्य : रु.60/-

'पूर्वोत्तर भारत की विभूतियाँ' शीर्षक पुस्तक कई महत्वपूर्ण शख्सियतों से हमारा साक्षात्कार कराती है। 15वीं शताब्दी के 'महापुरुष शंकरदेव' (1449-1568) से लेकर 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक सक्रिय 'असम की ज्योति : ज्योतिप्रसाद आगरवाला' (1903-1951) तथा 20वीं सदी के ही एक महान नायक और रियान क्रांति के नायक रतनमणि से यह पुस्तक हमारा साक्षात्कार कराती है। इस कृति में कुल 19 महान विभूतियों के बारे में इतनी सारगर्भित और रोचक जानकारी दी गई है कि पाठक एक बार पढ़ना शुरू करता है, तो किताब पूरी पढ़कर ही उठता है। पुस्तक की भाषा आम पाठक के अनुरूप और पृष्ठ संख्या के हिसाब से किताब का मूल्य भी पाठकों के अनुकूल ही है। पुस्तक के प्रकाशन का प्राथमिक उद्देश्य किशोरों को प्रेरक साहित्य उपलब्ध करवाना है ताकि हमारे पुरखों को वर्तमान पीढ़ी भली-भाँति समझ सके और इन विभूतियों से प्रेरणा लेते हुए निजी जीवन में स्वयं भी उल्लेखनीय कार्य कर सकें।

पूर्वोत्तर : आदिवासी सृजन, मिथक एवं लोककथाएँ

संपादन एवं संकलन : **रमणिका गुप्ता**

पृष्ठ : 225, मूल्य : रु.110/-

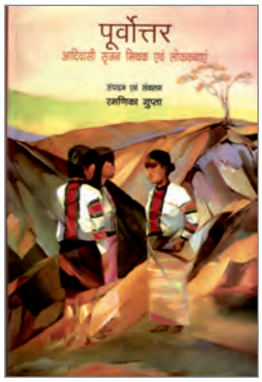

पूर्वोत्तर भारत प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। यहाँ का आदिवासी समाज महानगरीय चकाचौंध से कुछ कटा हुआ और अपनी नैसर्गिक सुंदरता को काफी हद तक बचाए रख सका है। जितना उन्होंने बचा रखा है, उसका अपना सौंदर्य और इतिहास बहुत रोचक है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने ऐसे आदिवासी सृजन मिथक एवं लोककथाओं को प्रकाशित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। ऐसी ही एक पुस्तक 'पूर्वोत्तर : आदिवासी सृजन, मिथक एवं लोककथाएँ' है। इस संकलन में अरुणाचल प्रदेश, असम, मिजोरम, मेघालय, नगालैंड, त्रिपुरा, सिक्किम, मणिपुर आदि पूर्वोत्तर राज्यों की कई उल्लेखनीय रचनाओं को संजोया गया है। पूर्वोत्तर के आदिवासी सृजन एवं मिथक संबंधी मान्यताओं,

किंवदंतियों, लोककथाओं पर केंद्रित यह पुस्तक हमें बहुत-सी महत्वपूर्ण जानकारियों से समृद्ध करती है।

पूर्वोत्तर की आदिवासी कहानियाँ

संपा. एवं संक. : **रमणिका गुप्ता**

पृष्ठ : 167, मूल्य : रु.65/-

रमणिका गुप्ता ने पूर्वोत्तर की कहानियों के संकलन-संपादन का महत्वपूर्ण कार्य भी किया है। इस संग्रह में अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मिजोरम, मेघालय, नगालैंड, त्रिपुरा, सिक्किम इलाकों में रहने वाली जनजातियों की कुल 26 कहानियों को हिंदी में अनूदित करके प्रस्तुत किया गया है। एक-एक कहानी के पीछे हिंदी और मूल भाषा विशेषज्ञ के तौर पर जुड़कर अनुवाद करने के बाद इस संग्रह को हिंदी में तैयार करने का बड़ा ही दुष्कर कार्य किया गया है। केवल अनुवाद के बाद सीधे-सीधे उनको प्रकाशित नहीं किया गया है, बल्कि सारी रचनाओं को पुनरीक्षण के उपरांत अपेक्षित सुधार के बाद ही अंतिम रूप से पुस्तक में सम्मिलित किया गया है।

मामोनी रायसम गोस्वामी की कहानियाँ

लेखक : **मामोनी रायसम गोस्वामी (इंदिरा गोस्वामी)**

अनुवाद : **श्रवण कुमार**

पृष्ठ : 106, मूल्य : रु.75/-

असमिया भाषा की महत्वपूर्ण कहानीकार इंदिरा गोस्वामी जिनका लेखिका के रूप में नाम (मामोनी रायसम गोस्वामी) है, ने 20वीं सदी के छठे दशक से आरंभ करते हुए लगभग 700 कहानियों का विपुल कथा-संसार रचा है। इनके लेखन के लिए सन् 1983 में इन्हें साहित्य अकादेमी सम्मान से सम्मानित किया गया है। न्यास ने इनकी महत्वपूर्ण कहानियों का संग्रह श्रवण कुमार जी के अनुवाद द्वारा हिंदी में प्रकाशित किया है। इस संग्रह की कहानियों का मूल विषय मानव जीवन की यंत्रणाओं और समाज में निरंतर बढ़ रही पतनोन्मुखता को उजागर करना है। समाज में एक तरफ यदि आसुरी शक्तियों की क्रूरता मौजूद है तो दूसरी तरफ लेखिका प्रेम और मानवता की तलाश को भी अपनी कहानियों में लक्ष्य बनाती है। समाज में व्याप्त अन्याय के खिलाफ इनका मूक संघर्ष अपने आप में पुरअसर है। एक तरफ परंपरागत आध्यात्मिक संस्कार है, दूसरी तरफ आधुनिकता। दोनों को ही अपनी रचनात्मक प्रतिभा से एक साथ साधने का अनूठा कार्य लेखिका ने किया है। इन कहानियों के अनुवाद में अनुवादक के श्रम का भी अच्छा-खासा योगदान है। कहानियों में व्याप्त भावों और विचारों को समझते हुए हू-ब-हू उनको अनुवाद में उतारना अपने आप में बहुत कठिन कार्य होता है।

आकाश

लेखक : **भवेन्द्र नाथ साइकिया**

अनुवाद : **नवारुण वर्मा**

पृष्ठ : 285, मूल्य : रु.115/-

असमिया के प्रसिद्ध कहानीकार डॉ. भवेन्द्र नाथ साइकिया की 20 कहानियों का एक संग्रह राष्ट्रीय पुस्तक न्यास ने प्रकाशित किया है। इस कहानी-संग्रह के शीर्षक संग्रह में संकलित एक कहानी 'आकाश' के नाम पर रखा गया है। असमिया में लिखी इन कहानियों का अनुवाद किया है नवारुण वर्मा ने। संग्रह में संकलित यात्रा वध, शर्म आती है, दुर्भिक्ष, जंजीर, गंगा स्नान, प्रहरी, आकाश, कृतज्ञ, दहेज, वानप्रस्थ, संध्यातारा आदि रचनाएँ पाठकों को विशेष रूप से प्रभावित करने में पूरी तरह सफल हैं। इन कहानियों को पढ़ते हुए पाठकों को असमिया समाज, जीवन-व्यवहार, मान्यताओं, परंपराओं आदि का सहज ही साक्षात्कार होता है। पारंपरिक कहानी के ताने-बाने के बीच कहानीकार भवेन्द्र नाथ साइकिया ने अपनी निजी भाषा-शैली की विशिष्टता और मानव जीवन और समाज के प्रति अपनी दृष्टि से भी पाठकों को भली-भाँति परिचित कराने में सफलता अर्जित की है।

नामघरैया

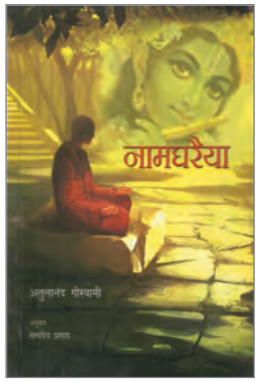

लेखक : **अतुलानंद गोस्वामी**

अनुवाद : **सत्यदेव प्रसाद**

पृष्ठ : 72, मूल्य : रु.55/-

यह असमिया भाषा का एक प्रसिद्ध उपन्यास है जिसे हिंदी भाषा में अनुवाद के माध्यम से राष्ट्रीय पुस्तक न्यास ने प्रकाशित किया है। इस उपन्यास का शीर्षक है— नामघरैया। चरित्रप्रधान इस उपन्यास के नायक के नाम पर ही उपन्यास का यह शीर्षक रखा गया है। वैष्णव परंपरा और मानवीय मूल्यों का पक्षधर नामघरैया के द्वारा रचनाकार ने एक बहुत ही प्रतिबद्ध वितान बुना है जिसके केंद्र में मानवीय मूल्यबोध निरंतर मौजूद है। धर्म को मानना और धर्म की गुलामी करना दोनों अलग-अलग बातें हैं। यह उपन्यास इस बारीक किंतु महत्वपूर्ण अंतर को पाठकों के समक्ष रखने में

कामयाब होता है। नामघरैया धार्मिक है, किंतु धर्मभीरु नहीं। यह बात बहुत गौर करने वाली है। आज के दौर में धर्मांधता और नास्तिकता दोनों से मुक्त रह पाना बहुत मुश्किल है। इस उपन्यास में इन चुनौतियों को बहुत सलीके से हल करते हुए दिखाया गया है। यह उपन्यास अपनी कथावस्तु और चित्रात्मक भाषा की खूबसूरती के कारण सहज ही पठनीय है।

त्रिपुरा

लेखक : **एस.एन. गुहा ठाकुरता**

अनुवाद : **संजय सिंह**

पृष्ठ : 128, मूल्य : रु.100/-

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत समय-समय पर पुस्तक प्रकाशन हेतु नवाचारी योजनाओं को लागू करता रहता है। 'भारत—देश और लोग' शीर्षक से एक परियोजना के तहत एक महत्वपूर्ण प्रकाशित पुस्तक है—त्रिपुरा। भारत के उत्तर-पूर्वी भू-भाग के दक्षिण-पश्चिम कोने में बसा त्रिपुरा प्रदेश और उसकी अनूठी विशेषताओं को इस पुस्तक में बखूबी प्रस्तुत किया गया है। त्रिपुरा के राजवंश से लेकर विभाजन के समय का उदार त्रिपुरा और बढ़ती आबादी और उग्रवाद से जूझता आज का त्रिपुरा भी इस पुस्तक में बखूबी चित्रित है। मूल रूप से इस पुस्तक का लेखन अंग्रेजी में एस.एन. गुहा ठाकुरता ने किया है। इसका हिंदी अनुवाद किया है संजय सिंह ने। पुस्तक में त्रिपुरा की लोक-संस्कृति, रीति-रिवाज और समृद्ध परंपरा का जीवंत चित्रण पाठकों को बाँधने में सफल है।

रानी गाइदिन्ल्यू

लेखक : **जगदम्बा मल्ल**

पृष्ठ : 156, मूल्य : रु.195/-

20वीं सदी के महान व्यक्तित्वों में नारी जाति में कई विशिष्ट प्रतिभाओं का योगदान अप्रतिम है। यह दुर्भाग्य का विषय है कि ऐसी बहुत-सी प्रतिभाओं के बारे में आज भी पाठकों को बहुत कम जानकारी उपलब्ध हो पाती है। इसका कारण ऐसी नारी अग्रदूतों पर प्रामाणिक पुस्तकों की अनुपलब्धता है। इस कमी को दूर करने के लिए न्यास ने नारी अग्रदूत शीर्षक से एक ऐसी नई पहल की शुरुआत की है जिसके तहत कला, संस्कृति, साहित्य, विज्ञान, सामाजिक-धार्मिक सुधार, स्वाधीनता आंदोलन आदि क्षेत्रों में प्रख्यात भारतीय महिलाओं के कार्यों एवं योगदान को प्रकाश में लाना है। न्यास ने राष्ट्रीय जीवनचरित पुस्तकमाला के अंतर्गत इस उप-शृंखला की प्रत्येक पुस्तक को भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं राष्ट्र-निर्माण संबंधी विमर्श पर नए परिप्रेक्ष्य के विकास के उद्देश्य से आम पाठकों के लिए प्रकाशित करना आरंभ किया है। भारतीयता से परिपूर्ण रानी गाइदिन्ल्यू जिन्हें लोग 'रानी माँ' के नाम से आदर देते और बुलाते थे, के जीवन के प्रमुख पक्षों और योगदान पर प्रकाश डालती यह पुस्तक अत्यंत प्रामाणिक है और पाठकों के ज्ञानवर्धन के लिए अत्यंत उपयोगी भी। 26 जनवरी, 1915 को मणिपुर के एक गाँव में जन्मी रानी गाइदिन्ल्यू की जन्मशताब्दी सन् 2015 में मनाई गई और यह पुस्तक भी उसी कालखंड के आस-पास प्रकाशित हुई है। भारत के स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में ऐसी अनेक वीरांगनाएँ हैं जिनकी उपलब्धियों से पाठक समुदाय अपरिचित है। न्यास की यह योजना इस अभाव को दूर करने की दिशा में एक मील का पत्थर सिद्ध होगी।

हेपाउ जादोनांग

लेखक : **जगदम्बा मल्ल**

पृष्ठ : 131, मूल्य : रु.175/-

भारतीय स्वाधीनता के इतिहास में मैदानी क्षेत्रों के स्वाधीनता सेनानियों की शौर्यगाथा से तो हम भली-भाँति परिचित हैं, किंतु सुदूर उत्तर-पूर्व प्रदेशों के सेनानियों की शौर्यगाथा का प्रकाशन उस रूप में अभी नहीं हो सका है, जैसा होना चाहिए। इन्हीं कमियों को दूर करने के लिए रानी गाइदिन्ल्यू के कालखंड के एक अन्य स्वाधीनता सेनानी हेपाउ जादोनांग की शौर्यगाथा को इस पुस्तक में प्रकाशित किया गया है। दोनों ही पुस्तकों के लेखक जगदम्बा मल्ल हैं। पुस्तक की प्रस्तावना में इस बात का उल्लेख मिलता है कि हेपाउ जादोनांग एक जन्मजात संन्यासी थे। उनकी आध्यात्मिक शक्ति के चुंबकीय प्रभाववश जो भी उनसे मिलता, बस उन्हीं का होकर रह जाता था। ऐसे विरले व्यक्तित्व के स्वामी ने देश की आजादी में जो अद्भुत पराक्रम दिखाया और अंग्रेजी सत्ता से लोहा लिया, उस पूरे जीवन चरित को जिस रूप में लेखक ने पाठकों के समक्ष रखा है, वह काबिले तारीफ है। पाठकों के लिए यह जानना जरूरी है कि 29 अगस्त, 1931 को मणिपुर के इंफाल नगर में अंग्रेजों ने हेपाउ जानोदांग पर चार मणिपुरी हिंदुओं की हत्या का मिथ्या आरोप लगाकर फाँसी दे दी, क्योंकि अंग्रेज जादोनांग द्वारा संचालित स्वतंत्रता संग्राम को कुचल देना चाहते थे, किंतु रानी गाइदिन्ल्यू ने न केवल इस स्वतंत्रता संग्राम को जारी रखा, बल्कि इसे और अधिक व्यापक और धारदार बनाया। ऐसी अनेक जानकारियों से भरपूर यह पुस्तक पाठकों को राष्ट्र के लिए सर्वस्व न्योछावर कर

देने वालों को याद करने और उनके मार्ग पर चलने की प्रेरणा देने में सफल है।

असम के बरगीत

लेखक : **बापचंद्र महंत**

पृष्ठ : 338, मूल्य : रु.365/-

'असम के बरगीत' शीर्षक से बापचंद्र महंत की पुस्तक असमिया समाज, धर्म, कला, संस्कृति में बरगीतों के महत्व से हमारा साक्षात्कार कराती है। महंत जी ने इस पुस्तक के संपादकीय में उल्लेख किया है "इस काम के लिए साहित्य संबंधी ज्ञान के साथ-साथ संगीत विषयक ज्ञान भी आवश्यक है, किंतु मैं संगीतज्ञ तथा गायक नहीं हूँ। इसलिए संगीत विषयक तथ्य अन्य संगीतज्ञों के तथा गायकों के लेखों से लिए गए हैं।" असम के बरगीतों की तरफ विद्वानों का ध्यान नगण्यप्राय है, इसलिए भी ऐसे विषय पर इस पुस्तक का प्रकाशन अपने आप में अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। विषयवस्तु और भाषा की दृष्टि से प्रकाशन योग्य सामग्री को प्रकाशित कर न्यास ने बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किया है। पुस्तक को दो खंडों में संजोया गया है। पहले खंड में गीतकारों की जीवन कथा परंपरा, साहित्यिक कृतियाँ, बरगीत का स्वरूप और दूसरे खंड में सटीक मूलपाठ, परिशिष्ट, सहायक तथा प्रासंगिक ग्रंथ सूची दी गई है। असम की तत्कालीन (15-18वीं सदी) सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर श्री शंकरदेव के एकीकरण कार्य का परिचय, उनके व्यक्तित्व-कृतित्व, और बरगीतों द्वारा उस समय के हिंदुओं और सीमांत जनजातियों-उपजातियों की आध्यात्मिक भावनाओं को राधा-कृष्ण के भक्तिपरक गीतों के माध्यम से एक सूत्र में पिरोने का काम किया है। इस दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण कृति है।

ब्रह्मपुत्र

लेखक : **अरूप कुमार दत्ता**

अनुवाद : **गजेन्द्र राठी**

पृष्ठ : 206, मूल्य : रु.150/-

नदियों को मानव सभ्यताओं के 'विकास की जीवनरेखा' कहा जाता है। यदि हम पूर्वोत्तर भारत की नदियों के बारे में सोचें, तो ब्रह्मपुत्र का नाम सबसे पहले हमारी जबान पर आता है। ब्रह्मपुत्र नदी और उसके किनारे जीवन जीने वाले जनसमूह की जीवन यात्रा को जिस रोचक अंदाज में लेखक ने शब्दों में पिरोया है, वह अद्भुत है। पुस्तक के लेखक अरूप कुमार दत्ता मूल रूप से असम के निवासी हैं और अंग्रेजी में लिखते हैं। उनकी इस पुस्तक का हिंदी अनुवाद गजेन्द्र राठी ने किया है। वे हिंदी, अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं में समान अधिकार रखते हैं। इस पुस्तक की गुणवत्ता को जानने के लिए अनुवादक का यह कथन पर्याप्त है, "सच कहूँ तो मैंने इस पुस्तक का मात्र अनुवाद ही नहीं किया है, बल्कि ब्रह्मपुत्र के साथ-साथ पूरे पूर्वोत्तर भारत की एक अविस्मरणीय यात्रा की है। एक ऐसी अद्भुत यात्रा जो अनेक रोमांचों, साहस और महत्वपूर्ण जानकारियों से भरपूर है। इससे पहले ब्रह्मपुत्र और पूर्वोत्तर भारत के बारे में मेरी जानकारी शायद नगण्य ही थी।" अनुवादक की यह आत्मस्वीकृति इस पुस्तक की महत्ता को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है। कुल दस अध्यायों में विभाजित यह पुस्तक अपने आप में अनूठी कृति है।

अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास

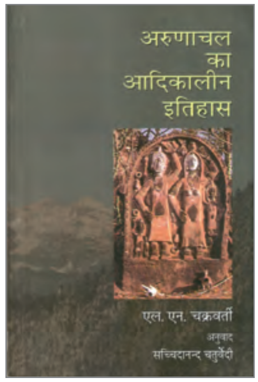

लेखक : **एल.एन. चक्रवर्ती**

अनुवाद : **सच्चिदानंद चतुर्वेदी**

पृष्ठ : 172, मूल्य : रु.65/-

प्राचीन पूर्वोत्तर सीमांत एजेंसी (नेफा), जिसे आज हम अरुणाचल प्रदेश के रूप में जानते हैं, वह सांस्कृतिक परंपराओं से बहुत समृद्ध प्रदेश है। इस प्रदेश को पूर्ण स्वामित्व प्राप्त होने के बाद इसके ऐतिहासिक, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य पर लगातार कुछ महत्वपूर्ण लेखन को प्रकाशित करने की जिम्मेदारी न्यास ने उठाई है। 'अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास' पुस्तक का प्रकाशन इसी दायित्व निर्वहन का प्रमाण है। मुख्य रूप से यह पुस्तक एल.एन. चक्रवर्ती द्वारा अंग्रेजी में लिखित और प्रकाशित है। सच्चिदानंद चतुर्वेदी ने इसका हिंदी अनुवाद किया है। वर्ष 2004 में इस पुस्तक का पहला संस्करण प्रकाशित हुआ, किंतु आठ वर्षों के अंतराल में इसकी भारी माँग को देखते हुए इसका चौथा संस्करण वर्ष 2012 में प्रकाशित हुआ है। अरुणाचल प्रदेश के समृद्ध इतिहास को जिस प्रकार से महज आठ अध्यायों में विभाजित कर बेहतर अनुवाद के द्वारा इस पुस्तक में परोसा गया है, वह काबिले तारीफ है। इस पुस्तक के द्वारा पाठकों को अरुणाचल प्रदेश के बारे में विस्तार से जानने-समझने में मदद मिलेगी।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से प्रकाशित कई अन्य पुस्तकें हैं—कथा भारती : असमिया कहानियाँ, बेजबरुआ की संकलित रचनाएँ, सौरभ चलिहा की चुनिंदा कहानियाँ, उपन्यासों में आदमी और जंगल, कपिली के आर-पार, गंगा चील के पंख, धरती की हँसी, पिता-पुत्र, आठ असमिया एकांकी और पियलीफुकन, रंमिली की मुस्कान, हरी पत्तियों की गाथा आदि। इन कृतियों के माध्यम से पूर्वोत्तर भारत की विशिष्टताओं से भली-भाँति परिचित हुआ जा सकता है।

सड़क किनारे पुस्तकालय

ज्ञान की देवी अर्थात सरस्वती की आराधना के लिए दो मंदिर हैं–विद्यालय और पुस्तकालय। विद्यालय में विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करता है और पुस्तकालय में विस्तृत ज्ञान। प्राचीनकाल में आज की तरह पुस्तकें एक स्थान पर उपलब्ध नहीं होती थीं। चूँकि पुस्तक हस्तलिखित होती थीं इसलिए एक पुस्तक केवल एक ही व्यक्ति पढ़ सकता था। उस समय ज्ञान प्राप्त करना बहुत ही दुरूह कार्य होता था क्योंकि गुरुकुल में शिक्षा के अलावा ज्ञान प्राप्ति का कोई अन्य माध्यम नहीं था, लेकिन वर्तमान में पुस्तकालयों में विविध विषयों पर हजारों पुस्तकें उपलब्ध हैं।

पुस्तकालय ज्ञान और अध्ययन का केंद्र होता है और यदि आपको पुस्तकें सड़क के किनारे बने मुफ्त पुस्तकालयों में आसानी से उपलब्ध हो जाएँ तो बात ही क्या। ऐसी ही पहल कई पूर्वोत्तर राज्यों में की गई। मिजोरम की राजधानी आइजोल धार्मिक-सांस्कृतिक केंद्र के साथ-साथ मुफ्त ज्ञान के लिए लोकप्रिय हो रही है। आइजोल में सड़क किनारे कई निःशुल्क पुस्तकालय खोले गए हैं जो पुस्तक प्रेमियों और ज्ञानपिपासुओं को बहुत पसंद आ रहे हैं। यहाँ न केवल पुस्तकों का लाभ उठा सकते हैं, बल्कि यहाँ कोई भी पुस्तक दान कर सकता है। इन पुस्तकालयों में हर वर्ग के लिए पुस्तकें उपलब्ध हैं।

ऐसी ही पहल अरुणाचल प्रदेश की मीना गुरुंग ने पापुम परे जिले के एक छोटे से कस्बे 'निर्जुली' में 'स्ट्रीट लाइब्रेरी' के रूप में की है। उन्होंने इसका नाम 'सेल्फ हेल्प लाइब्रेरी' रखा है। निर्जुली शहर में सड़क के किनारे किताबों से सजी रैक के सामने दो बेंच रखे गए हैं ताकि लोग चाहें तो वहीं बैठकर पढ़ भी सकें। लोग यहाँ से अपनी पसंदीदा किताबें मुफ्त ले जाते हैं और पढ़ने के बाद उनको फिर उसी जगह रख जाते हैं। गुरुंग ने बेंगलुरु से अर्थशास्त्र में स्नातक किया है। उन्होंने जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त अपनी बहन के साथ मिलकर महिलाओं तक बुनियादी शिक्षा की पहुँच आसान बनाने के लिए गुरंग लर्निंग इंस्टीट्यूट की स्थापना की। वे अरुणाचल प्रदेश के हर छोटे और बड़े शहर में ऐसे ही पुस्तकालय खोलना चाहती हैं। उन्हें मिजोरम की 'मिनी वे साइड लाइब्रेरी' से स्ट्रीट लाइब्रेरी की प्रेरणा मिली है।

ऐसा ही एक पुस्तकालय एक स्वयंसेवक समूह द्वारा ओडिशा की मलकानगिरी में शुरू किया गया है। सड़क के किनारे स्थापित पुस्तकालय सभी को आकर्षित कर रहा है जिसका उद्देश्य मोबाइल फोन और टेलीविजन सेट से बच्चों को दूर रखना है। इस समूह को 'बड़ी दीदी' नाम दिया गया है। दीपारानी नायक के अनुसार, यह स्वयंसेवक पुस्तकालय पुस्तकों के प्रति बच्चों और युवाओं की रुचि जगाने के लिए शुरू किया गया है।

सड़क की पटरियों पर ज्ञानालय होने से खासतौर से वे लोग लाभान्वित होंगे जिनके पास पुस्तक खरीदने के लिए धन नहीं है या फिर संसाधनों का अभाव है, साथ ही ज्ञानपिपासु भी हैं। ऐसे पुस्तकालय समाज में एक सामाजिक-शैक्षणिक संस्कृति के विकास का प्रतीक हैं। इस तरह की पहलें पूरे देश में की जानी चाहिए ताकि लोगों का जुड़ाव पुस्तकों से बना रहे और ज्ञान प्राप्ति के साथ-साथ जनता का बौद्धिक विकास भी हो।

विजय कुमार 'शाश्वत'

जन्म : 01 अक्तूबर, 1983, कानपुर देहात, उत्तर प्रदेश।

शिक्षा : पत्रकारिता में स्नातकोत्तर।

संप्रति : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत में संपादकीय सहायक के रूप में कार्यरत।

प्रकाशन : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कई रचनाएँ प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 8010270501

ई-मेल : kvijay467@gmail.com

समीक्षक : **उमेश चतुर्वेदी**

संपादक : **शशिशेखर वेम्पटि**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 366

मूल्य : रु. 500/-

आकाशवाणी साहित्य संपदा

तकनीकी और संचार क्रांति के दौर में भारत सरकार के आधिकारिक रेडियो संचार माध्यम आकाशवाणी की धमक भले ही कमजोर पड़ गई हो, लेकिन इसका अपना समृद्ध इतिहास रहा है। देश के साहित्यिक और सांस्कृतिक वितान को गंभीर विस्तार देने में आकाशवाणी ने अतुलनीय भूमिका निभाई है। रेडियो की इस समृद्धि में 1952 से 1962 तक देश के सूचना और प्रसारण मंत्री बालकृष्ण विश्वनाथ केसकर की दृष्टि की बड़ी भूमिका रही जिन्होंने अपने दौर में रेडियो को माँजने, उसकी भाषा को प्रशस्त बनाने और कार्यक्रमों की उच्च्य गुणवत्ता के लिए देश की सभी प्रमुख भाषाओं के प्रमुख लेखकों को इससे जोड़ा। उन्हीं के कार्यकाल में जब रचनाधर्मी अधिकारी जगदीश चंद्र माथुर को आकाशवाणी का महानिदेशक बनाया गया तो उन्होंने रेडियो को रचनात्मक माध्यम बनाने में रचनात्मक दृष्टि के साथ ही अपनी पूरी ताकत झोंक दी। माथुर 1955 से 1961 तक आकाशवाणी के महानिदेशक रहे।

आकाशवाणी ने उस दौर में रचनाधर्मिता की जो मजबूत नींव रखी, उदारीकरण के पहले तक उस पर उसका प्रसारण आगे बढ़ता रहा। उसके प्रसारण की गुणवत्ता और रचनात्मकता का अनकहा दबाव था कि श्रव्य माध्यम होने के बावजूद आकाशवाणी ने उस दौर में प्रकाशन के क्षेत्र में भी कदम रखा। तब आकाशवाणी ने हिंदी में 'आकाशवाणी' और 'सारंग', उर्दू में 'आवाज', बांग्ला में 'बेतार जगत', अंग्रेजी में 'इंडियन लिट्रेचर' और 'कालिंग इंडिया', गुजराती में 'नभोवाणी', तेलुगू में 'वाणी' और तमिल में 'वानोली' आदि नाम से पत्रिकाएँ भी निकालीं। इन पत्रिकाओं के एक भाग में अगले महीने प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों की जानकारी और दूसरे भाग में प्रसारित हो चुके बेहतरीन कार्यक्रमों का ट्रांसक्रिप्शन यानी लिखित रूप प्रकाशित किया जाता था। इस संदर्भ में देखें तो आकाशवाणी से प्रकाशित होती रही ये पत्रिकाएँ अपने दौर के प्रसारण का न सिर्फ इतिहास, बल्कि समृद्ध रचनात्मक विरासत को सँजोए हुए हैं। उन्हीं बहुमूल्य खजाने से आकाशवाणी ने राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के सहयोग से ऐसी सामग्री निकालकर पाठकों के सम्मुख 'आकाशवाणी साहित्य संपदा' नाम से प्रस्तुत की है। इसी संपदा के भाग चार में आकाशवाणी के अभिलेखागार से ऐसी रचनाएँ संकलित की गई हैं, जिन्हें पढ़कर न सिर्फ हैरत होती है, बल्कि रोमांच भी होता है।

समीक्ष्य भाग चार में हिंदी के वरिष्ठ पत्रकार और स्वाधीनता सेनानी बनारसीदास चतुर्वेदी लिखित और रेडियो पर प्रसारित दीनबंधु एंड्रूज के संस्मरण, छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत लिखित गुरुदेव रवींद्र नाथ टैगोर को श्रद्धांजलि जैसी रचनाएँ संकलित हैं, जिनके जरिये दोनों हस्तियों के व्यक्तित्व के कई अनजाने पहलुओं पर रोशनी पड़ती है, जिसे आज का पाठक शायद न जानता हो। पत्रों के प्रकाश में प्रेमचंद (बनारसीदास चतुर्वेदी), पत्रों के प्रकाश में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (बनारसीदास चतुर्वेदी) जैसी रेडियो वार्ताएँ भी इस संग्रह में हैं, जिनके जरिये दोनों लेखकों के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है।

इस संग्रह में एक बहुत ही दिलचस्प वार्ता शामिल है, जिसे उदयशंकर भट्ट ने लिखा है। इसमें भट्ट ने बहुत ही रोचक ढंग से बताया है कि अगर जयशंकर प्रसाद के मशहूर नाटक 'चंद्रगुप्त' को वे लिखते तो कैसे लिखते। इस संग्रह में उस दौर के सभी प्रमुख हिंदी लेखकों की लिखी कहानियाँ, संस्मरण, कविताएँ, आलोचना निबंध और यात्रा-वृत्तांत शामिल हैं, जैसे—घाघ-भड्डरी की कहावतों पर निबंधकार गुलाब राय की रचना है तो रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है कि वे अब आगे क्या लिखना चाहते हैं। इस संग्रह में कई गंभीर विषयों के उदाहरणार्थ साहित्यालोचना की दृष्टि पर भी निबंध संकलित हैं, जैसे—गुलाब राय का निबंध, आलोचना संबंधी मेरी मान्यताएँ, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल लिखित आधुनिक हिंदी कहानी के मूल स्रोत, अमृतलाल नागर लिखित 'रजतपट' और 'रंगमंच की विशेषताएँ' आदि बेहद गवेषणात्मक और गहन चिंतनपरक निबंध हैं।

हिंदी में मीडिया के लिए कालांतर में एक अवधारणा विकसित की गई कि मीडिया की भाषा सहज होनी चाहिए, विषय भी सहज और आम होने चाहिए। हिंदी पत्रकारिता के छात्रों और आज के दौर के दैत्याकार टेलीविजन मीडिया के समाचार-कार्यक्रम निर्माण कक्षों में शामिल होने वाले हर सहभागी के लिए यह अवधारणा घुट्टी की तरह पिला दी गई है। सहज भाषा की अवधारणा ने हिंदी का भले ही विस्तार किया हो, लेकिन उसे उथला और अगंभीर बनाया है। गंभीर विमर्श की भाषा माध्यम बनने की उसकी कोशिश इस अवधारणा से

कमजोर हुई है। आकाशवाणी की साहित्य संपदा से चुने हुए ये मोती इस बात के गवाह हैं कि अपने स्वर्णिम दिनों के सबसे प्रभावी मीडिया माध्यम रेडियो किस तरह की प्रांजल भाषा और गंभीर रचनाधर्मिता का वाहक था। तब उसके संप्रेषण में कहीं कोई कमी नहीं थी।

इस संकलन को तैयार करने में दूरदर्शन के पूर्व अधिकारी अशोक त्रिपाठी ने बहुत मेहनत की है। हालाँकि बेहतर होता कि इस संग्रह में एक विधा या अनुशासन की रचनाओं को एक साथ रखा जाता तो पाठकों का उनका रसास्वादन करने में सहूलियत होती। फिर भी यह संकलन बीते दिनों की रचनाधर्मिता की ऐसी थाती है, जिसे संजोकर हिंदी साहित्य का गंभीर पाठक रखना चाहेगा। प्रसारण पत्रकारिता के पेशेवरों और विद्यार्थियों के लिए भी यह संग्रह बेहद जरूरी है, जिसके जरिये वे अतीत के प्रसारण की रचनात्मक और कलात्मक ऊँचाइयों को समझ सकते हैं।

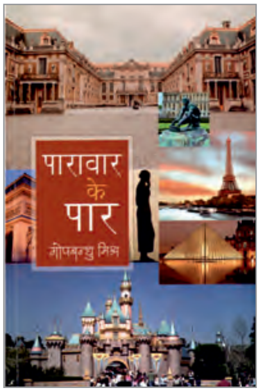

समीक्षक : **जनार्दन मिश्र**

लेखक : **डॉ. गोपालबन्धु मिश्र**

अनुवादक : **डॉ. शैलेश कुमार मिश्र**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत।

पृष्ठ : 208

मूल्य : रु. 240/-

पारावार के पार

पेरिस (फ्रांस) के सोर्बोन नोवेल यूनिवर्सिटी में संस्कृत के अतिथि प्रोफेसर रहे डॉ. गोपालबंधु मिश्र संस्कृत साहित्य के उद्भट विद्वान हैं। अब तक उनकी आठ से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं तथा 11 पुस्तकों का उन्होंने संपादन भी किया है। सन् 2015 में वाराणसी के 'किशोर विद्या निकेतन' द्वारा संस्कृत में प्रकाशित उनकी पुस्तक 'पुरस्तात् पारिस्' में फ्रांस समेत कमोबेश तमाम यूरोपीय देशों की जीवन-शैली, रहन-सहन, नगर-नियोजन एवं व्यवस्था आदि के संबंध में भी यत्किंचित् जानकारी पाठकों को मिलेगी। संस्कृत एवं हिंदी में समान अधिकार रखने वाले उन्हीं के अनुज डॉ. शैलेश कुमार मिश्र ने 'पुरस्तात् पारिस्' का 'पारावार के पार' नाम से हिंदी में अनुवाद किया है, जो राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से प्रकाशित है।

संस्कृत विश्व की प्राचीनतम भाषा है। इसे 'देववाणी' अथवा 'सुरभारती' भी कहा जाता है। हमारे सारे वैदिक धर्मग्रंथ संस्कृत भाषा में ही लिखे गए हैं। 'पारावार के पार' की शुरुआत में ही पेरिस नगरी से जुड़ी 14 तस्वीरें सलंग्न हैं जिसमें गगनचुंबी एफिल टावर, वर्साई का ऐतिहासिक महल, नारी सौंदर्य एवं रूप-लावण्य से परिपूर्ण प्रस्तर मूर्ति, पेंटिंग्स शामिल हैं। पेरिस नगर की जीवन-शैली का उल्लेख करते हुए प्रो. मिश्र लिखते हैं कि वहाँ के लोग घड़ी को हाथों का आभूषण नहीं, बल्कि जीवन संवाहिका के तौर पर इस्तेमाल करते हैं। वहाँ प्रत्येक चौराहे तथा मेट्रो रेल स्टेशन के ऊपर लगे खंभों पर घड़ियाँ लगी हैं। अपनी बातों को आगे बढ़ाते हुए वे लिखते हैं कि पेरिसवासियों की समृद्धि के पीछे एक विशिष्ट कारण समयानुशासन भी है।

भारत में पैदल यात्री को गाड़ियों में बैठे लोग उपेक्षित दृष्टि से देखते हैं और अपने को आकाशगामी समझते हैं, जबकि पेरिस में सड़क पर आने-जाने के विषय में पैदल यात्री को हमेशा महत्व दिया जाता है।

मन की विविध दिशाएँ ही रमणीयता का निर्धारण करती हैं, यह सिद्ध हो जाने के बाद भी सौंदर्य प्रेमी सौंदर्य का वर्णन तभी करते हैं जब स्वभावतः कोई सौंदर्य दिखलाई पड़ता है।

पेरिस नगरी के सौंदर्य को देखकर प्रो. मिश्र ने अपने प्रिय महाकवि कालिदास के श्लोकों को कई जगह इस पुस्तक में उद्धरण के रूप में उद्धृत किया है।

अपने यहाँ साथ-साथ चलते हुए अपरिचित लोगों से भी हम पूछ लेते हैं कि आप कहाँ के रहने वाले हैं? कहाँ जा रहे हैं? क्या करते हैं? पर पेरिस में ऐसा व्यवहार उचित नहीं समझा जाता। एक बार मनोहारिणी देहयष्टि और विनम्र मुख, कोमलकांति और सरल शांति, स्फूर्तिहीन समय और आलस्यरहित आचरण, शैल्यपूर्ण समय और गर्माहट भरा अभिनंदन, कार्यसापेक्ष कर्म करना और व्यक्ति को निरपेक्ष रखना, ये सभी गुण सुकुमार युवती में एकत्र थे। ऐसे में कई बार प्रो. मिश्र के मन में उस युवती का व्यक्तिगत वृत्त जानने की इच्छा हुई, लेकिन वहाँ यह सब उचित नहीं समझा जाता है इसलिए उन्होंने उससे कोई प्रश्न नहीं किया, जबकि हम भारतीयों का मानना है कि यूरोपीय जीवन-शैली में इतना खुलापन है कि अनजान स्त्री-पुरुष भी आपस में खुल्लम-खुल्ला बात करते हैं, पर ऐसा नहीं है। वहाँ उन्हीं के बीच खुलापन है जो मित्र हैं, बिना मित्रता एक-दूसरे से बात करना वहाँ अनुचित माना जाता है।

प्रो. मिश्र सोर्बोन नोवेल विश्वविद्यालय में पहले कदम के अंतर्गत उस विश्वविद्यालय के संक्षिप्त वर्णन में लिखते हैं कि जैसे हमारे यहाँ वाइस चांसलर होते हैं वहाँ प्रेसिडेंट होते हैं। वहाँ छात्र-छात्राएँ विभिन्न पोशाकों में आते हैं। धूम्रपान करना उनके लिए आम बात है, पर विश्वविद्यालय के अंदर नहीं, उसके बाह्य प्रांगण में। विश्वविद्यालय के बाहर आधी जली हुई सिगरेट के टुकड़े मिलना वहाँ आम बात है।

इस पुस्तक में अनेक शीर्षक हैं मसलन—संध्या, समय, सौंदर्यबोध, हिमसंघर्ष, फुटपाथ, जरा, आवागमन, टिकट निरीक्षण

और मेट्रोयात्रा, यौवन, लौकिकता, भैक्ष्य और भिक्षाटन, जराजीर्ण बार्द्धक्य, भारत भवन में टैगोर जन्मोत्सव, विश्वविद्यालय का बाह्य प्रांगण आदि जिसमें प्रो. मिश्र ने अपनी यात्रा का संक्षिप्त में ही सही, पर सारगर्भित उल्लेख किया है। कई जगह वे भारत की जीवन-शैली से वहाँ की जीवन-शैली की तुलना करते हैं। समग्रता में यह पुस्तक एक ऐसी कथा यात्रा से पाठकों को अवगत कराती है, जिसमें रोमांच के साथ-साथ अपने आप को यूरोपीय दर्पण में देखने का अवसर मिलता है।

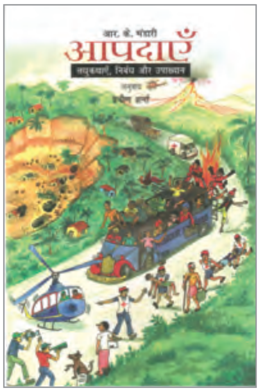

आपदाएँ

समीक्षक : **अनिता रश्मि**

लेखक : **आर. के. भंडारी**

अनुवादक : **प्रवीण शर्मा**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत।

पृष्ठ : 172

मूल्य : रु. 210/-

'आपदाएँ' पुस्तक में शामिल लघुकथाएँ, निबंध, उपाख्यान में आपदाओं की गूँज है। जाने-माने अनुसंधान वैज्ञानिक, भू-जोखिम विशेषज्ञ, प्रोफेसर, आपदा न्यूनीकरण फोरम के अध्यक्ष, चर्चित-पुरस्कृत लेखक डॉ. आर.के. भंडारी की कलम से विविध आपदाओं की कथात्मक पड़ताल की गई है। रोचक ढंग से सत्य को उद्घाटित किया गया है।

विभिन्न उपशीर्षकों में बँटी आपदाओं की सच्ची कहानियाँ, सच्चे विवरण, परिचय के साथ प्रकृति के प्रति हम मनुष्यों द्वारा बरती गई हिंसा, अन्याय, छल को प्रस्तुत किया गया है। लेखक भी स्वीकारते हैं, प्राकृतिक आपदाओं के पीछे कहीं-न-कहीं हम दो पैर वाले बुद्धिमान समझे जाने वाले मनुष्य ही जिम्मेदार हैं। सभी आपदाएँ ईश्वर प्रदत्त नहीं हैं।

31 खंडों में आपदाओं, हादसों के बारीक पड़ताल के साथ उसके समाधान की चर्चा पुस्तक को बहुत उपयोगी बनाती है, लेकिन हर समस्या का समाधान होता है। पुस्तक में सूनामी, सूखा, बाढ़, बर्फीले तूफान, भूकंप, ज्वालामुखी, आकाशीय बिजली सभी पर विस्तारपूर्वक बताया गया है। 'अपशकुन' हो 'दो जादुई मंत्र' या 'चमत्कारी रूबी' सभी पाठकों को कुछ-न-कुछ दे जाते हैं। सच ही लिखा है—'आपदाएँ केवल बुरी ही नहीं होतीं!'

ज्योतिषीय भविष्यवाणी से लेकर यंत्रों के सहारे आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से आपदा पूर्वानुमान के बारे में बताने के लिए रोचक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। आर.के. भंडारी के आपदा-विश्लेषण, गहन अध्ययन, जीवनानानुभव, अनेक वर्षों की लेखकीय साधना और अत्यधिक परिश्रम का फल है यह पुस्तक। लोकप्रिय गाथाओं, पौराणिक उपाख्यानों, सामान्य लघुकथाओं के सोपान पर चढ़ भंडारी जी ने इस पुस्तक को रचा है। सबसे बड़ी बात है कि बिना बोझिल हुए गंभीर, शुष्क विषय में भी लेखक के कौशल ने गुदगुदाहट भर दी है। खेल-खेल में पाठकों को बहुत कुछ बताने, सिखाने का सहज प्रयास किया गया है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से आम लोगों को अवगत कराने की पुरजोर कोशिश है। संदेश और किताब का उद्देश्य लेखक के द्वारा प्रस्तुत आमुख से ही स्पष्ट है।

वे कथा-पात्रों के माध्यम से पीड़ित राज्यों में जाकर अपनी आँखों से तबाही देखने, समझने को उत्साहित करते हैं। इससे प्रकृति के दोहन से हुए नुकसान और अपनी जिम्मेदारी के प्रति लोग जागरूक होंगे।

भाषा की रवानी, सरलता-सहजता इसकी अतिरिक्त खासियत है। प्रेरक प्रसंगों, वैश्विक उदाहरणों-परिस्थितियों, आपदाओं पर सुचिंतित अध्यायों से लेखन विश्वसनीय बन पड़ा है। ज्वलंत विषय पर्यावरण पर सार्थक चिंतन, विलुप्त होने की कगार पर डोडो पक्षी हो या अन्य पक्षी, सब पर समान रूप से लिखा।

अनियंत्रित ईश्वरीय प्राकृतिक आपदाओं संग मानवजनित आपदाओं के कारकों, अनिष्ट के स्पष्ट संकेतों की पहचान कर उससे बचने के उपाय बताए हैं। विषय की विविधता देखते बनती है। आदिकालीन स्थितियों से अब तक की सोच पर लेखक ने पूरे मन से कलम चलाई है। कुछेक शीर्षक इतने आकर्षक हैं कि पाठकों का मन अटका रह जाता है, यथा—ईश्वर के रंगमंच पर आपदाओं का तमाशा, गुलगुले का स्वाद तो चखने पर ही मिलता है, प्यार और जंग में सब जायज है, स्व से ऊपर सेवा, बंद किताब में गुम सपना आदि।

बीच-बीच में दिए गए रेखांकन बोलते हुए से हैं—नेहरू जी, कवींद्र रवींद्र नाथ टैगोर के विचारों के साथ के स्केच या किसानों, आपदाओं के सम्यक चिंतन पर स्केच। पुस्तक केवल आगाह करने की जिम्मेदारी नहीं निभाती, उचित समाधान की दिशा की ओर भी इंगित करती है। यह आपदाओं की असली वजह, बचाव, उपाय समझने में सहायक है। पृथ्वी हम सबकी है, हम सब इसकी दुर्दशा के जिम्मेदार हैं, तो हमें सबको इसे सँवारने की भी जिम्मेदारी उठानी होगी, स्पष्ट संकेत दे रही है 'आपदाएँ' पुस्तक।

'आपदाएँ' वैश्विक महत्व की प्रेरणादायक, अनोखी, रोचक पुस्तक है। पुस्तक एक नवीन सोच वाली पीढ़ी को उत्प्रेरित करने-गढ़ने में सक्षम है। आम लोगों, छात्रों को जगाने का प्रयास-प्रयोग बहुत ही सार्थक सिद्ध होगा, इसमें दो राय नहीं। समग्र रूप से पुस्तक पठनीय है।

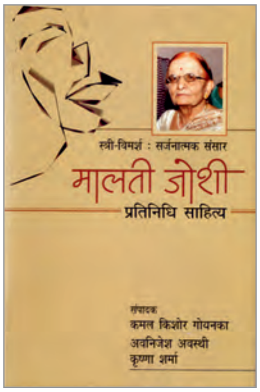

समीक्षक : **सुधांशु गुप्ता**

संपादक : **कमल किशोर गोयनका, अवनिजेश अवस्थी, कृष्णा शर्मा**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत।

पृष्ठ : 356

मूल्य : रु. 360/-

स्त्री विमर्श : सर्जनात्मक संसार

मालती जोशी

प्रतिनिधि साहित्य

मालती जोशी की पहली कहानी 1952 में कानपुर की पत्रिका 'अरुणा' में 'माँ' शीर्षक से छपी थी। यानी उन्हें लिखते हुए 68 साल का समय हो चुका है। यह इतना लंबा अरसा है, जिसमें दुनिया ने तमाम बदलाव देखे। ये बदलाव तकनीकी और औद्यिक ही नहीं थे, बल्कि इस दौरान पारिवारिक मूल्य, नैतिक मूल्य, परिवार की आस्थाएँ और इनसान के सपने तक बदल गए। मध्यवर्गीय परिवार भी अब पहले जैसे नहीं रहे। उनकी समस्याएँ और प्राथमिकताएँ निरंतर बदलती रहीं, लेकिन मालती जोशी के रचनाक्रम में न यह दुनिया बदली और न ही उनकी धुरी। यही वजह है कि उनकी कहानियों में मध्यवर्गीय परिवारों की ही दास्तान है। मध्यवर्ग के छोटे-छोटे दुख, छोटी-छोटी समस्याएँ उनकी कहानियों में सहज रूप से आते हैं। वरिष्ठ और आदरणीय मालती जोशी ने साहित्य की लगभग हर विधा में लिखा है, कविताएँ, कहानियाँ, उपन्यास, संस्मरण, बाल साहित्य, रेडियो और रंगमंच के लिए लेखन। लेकिन लेखन के प्रति मालती जोशी ने अपना नजरिया कभी नहीं बदला। परंपरागत तरीकों को ही अपना हथियार बनाए रखा। इस पुस्तक में उनका एक लघु उपन्यास—पाषाण युग, 15 कहानियाँ, दस गीत, दो साक्षात्कार, पाँच संस्मरण और दो बाल कहानियाँ हैं। एक तरह से देखें तो यह पुस्तक न केवल मालती जोशी की साहित्यिक तस्वीर आपके सामने उजागर करती है, बल्कि आप चाहें तो इसके माध्यम से 70 साल के साहित्य की दुनिया को भी समझ सकते हैं।

उनकी कहानियाँ उस परिधि से कहीं बाहर नहीं जातीं, जिस पर रहना मालती जोशी को प्रिय भी है और शायद उनकी मजबूरी भी। वह स्वयं कहती हैं, "मैंने उधार के अनुभवों पर कभी नहीं लिखा।" और उनके अनुभवों ने कभी परिवार की दहलीज नहीं लाँघी। उनकी कहानियों में, उनके उपन्यास में यह साफतौर पर देखा जा सकता है। 'मैंने चाँद तारे तो नहीं माँगे थे' कहानी में वह निधि की कहानी कहती हैं। निधि ने प्रेम विवाह किया और समीर के परिवार की सभी जायज-नाजायज माँगों को भरसक पूरा किया, लेकिन वह जल्दी ही मोह से बाहर आ जाती है और समझ जाती है कि मन में सौ योजन की दूरी रखकर एक छत के नीचे रहने से तो अच्छा है कि दूर रहा जाए। मालती जोशी घरेलू घटनाओं के माध्यम से मध्यवर्गीय स्त्री को महत्वहीन बनाए जाने को प्रकट करती हैं 'बकुल फिर आना' में। गृह प्रवेश, वेल डन पापा, मोह भंग, निर्वासित कर दी तुमने मेरी प्रीत उन पारिवारिक घटनाओं और परिस्थितियों पर लिखी गई कहानियाँ हैं, जिन पर लेखक आमतौर पर लिखने की नहीं सोचता। 'कोख का दर्प' कहानी में मालती जोशी गरीब परिवारों द्वारा बच्चे को गोद दिए जाने की पीड़ा को कहानी का विषय बनाती हैं तो 'हादसे और हौसले' कहानी में एक फौजी के एक पैर गँवा देने के बाद किस तरह उनकी प्रेम कहानी आकार लेती है, इसका बहुत संदर वर्णन मालती जी ने किया है। मालती जोशी अपनी लगभग हर कहानी में पारिवारिक मूल्य की वकालत करती हैं। छोटी-छोटी घटनाओं के माध्यम से ही वह उपभोक्तावादी संस्कृति के खिलाफ भी आवाज उठाती हैं, लेकिन यह प्रतिरोध की आवाज नहीं है। यह वैसी ही आवाज है जो केवल घर की चारदीवारी में सुनी जा सकती है। आदर्श, मूल्यों का साथ मालती जोशी कभी नहीं छोड़तीं। इन आदर्शों के मोह में कई बार ऐसा भी होता है कि वे स्वाभाविक रूप से बदल रहे मूल्यों को भी नहीं देख पातीं। किसी भी तरह की जटिलता आप उनकी कहानियों में या उपन्यास में नहीं पाएँगे। उनके गीतों में एक लयात्मकता सुनाई पड़ेगी—

तुम चिर-नूतन स्वप्न हमारे,
मुँदे दृगों में पाहुन बनकर,
कभी-कभी तुम आ जाते हो,
सूने पल को बिता सकूँ मैं,
ऐसी निधियाँ दे जाते हो,
परिचय तो बस यही तुम्हारे...

विधा कोई भी हो। सादगी और सरलता मालती जोशी का गुण है। उनके बिंब, कथ्य, उनकी भाषा और उनका वर्णन कभी अपनी सीमाओं का उल्लंघन नहीं करता। सकारात्मकता की पैरोकार मालती जोशी अपने एक इंटरव्यू में साफ कहती हैं, "जीवन के प्रति मेरा हमेशा सकारात्मक दृष्टिकोण रहा है। मेरा सूत्र वाक्य है—'जेहि विधि राखे राम तेहि विधि रहिए' और प्रबल आस्था तथा विश्वास है कि 'भली करेंगे राम', और मेरा विश्वास कभी निष्फल नहीं हुआ।"

इसलिए मालती जोशी के लेखन में किसी तरह की नकारात्मकता की उम्मीद नहीं की जानी चाहिए, मानकर यही चलना चाहिए कि हर समस्या का समाधान आस्था और विश्वास से हो सकता है। लेकिन मालती जोशी ने अपनी क्षमताओं को पहचाना और उसके बाहर जाकर कभी कुछ लिखने का प्रयास नहीं किया। उन्होंने वही लिखा जो उन्होंने अनुभव किया। अपनी धुरी पर बने रहना उनकी ताकत भी बनी और कमजोरी भी।

समीक्षक : **रोहित कौशिक**

लेखक : **हरपाल सिंह 'अरुष'**

अनुवादक : **मदन सोनी**

प्रकाशक : अंश प्रकाशन, दिल्ली।

पृष्ठ : 152

मूल्य : रु. 350/-

चंदन और थर्मोकोल

(कहानी संग्रह)

कहानी संग्रह 'चंदन और थर्मोकोल' में अनेक रंगों की कहानियाँ संकलित हैं। दरअसल यह बहुत ही संश्लिष्ट और उलझा हुआ समय है। इसलिए इस समय को समझे बिना सामाजिक यथार्थ को समझ पाना मुश्किल है। हरपाल सिंह 'अरुष' एक सिद्धहस्त कथाकार हैं। वे इस कठिन समय के सामाजिक यथार्थ पर पैनी नजर रखते हैं। इस बदलते दौर ने मनुष्य और समाज के आपसी संबंधों में दरार पैदा कर दी है। अरुष मनुष्य और समाज के बदलते अंतर्संबंधों को गंभीरता से परखते हैं। इन कहानियों में एक तरफ किसान और मजदूर की समस्याएँ हैं तो दूसरी तरफ कस्बाई और शहरी मध्यम वर्ग की परेशानियाँ भी मौजूद हैं।

'अंतर' शीर्षक कहानी दो पीढ़ियों के विचारों का अंतर प्रदर्शित करती है। दोनों पीढ़ियों की अपनी समझ है। बड़ी बात यह है कि इस कहानी में दोनों पीढ़ियाँ एक-दूसरे के विचारों का सम्मान करती हैं। इस कहानी की बड़ी सफलता यह है कि यह यथार्थ को चित्रित कर आगे नहीं बढ़ती, बल्कि बहुत ही सलीके से हमें यह बताने की कोशिश भी करती है कि यथार्थ को कटु बनाने से रोका जा सकता है। यह कहानी सिद्ध करती है कि हमेशा ही दो पीढ़ियों के विचारों में अंतर विद्यमान रहता है। अगर हम एक-दूसरे के विचारों को सम्मान देते हुए आगे बढ़ें तो जिंदगी की राह आसान हो जाती है। इस कहानी में मनीषा का मानना है कि गर्भावस्था में डॉक्टर के परामर्श के अनुसार सावधानी बरतनी चाहिए, जबकि मनीषा की सास का मानना है कि छोटी-छोटी बात के लिए डॉक्टर के पास भागना समझदारी नहीं है। इस दौर में डॉक्टर व्यावसायिक ज्यादा हो गए हैं। प्राचीन और परंपरागत ज्ञान से भी स्वस्थ रहने में सहायता मिलती है। इस कहानी को पढ़कर अहसास होता है कि लेखक ने सामाजिक यथार्थ का बेहतरीन मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है।

'गली का आखिरी घर' शीर्षक कहानी दो अलग-अलग धर्मों से आए प्रेमियों के गृहस्थ जीवन की कथा है। दोनों ने ही अपने परिवारों से विद्रोह करके शादी की है। अर्णव के विद्रोही और क्रांतिकारी विचार अपनी माता जी के परंपरावादी विचारों के सामने कुंद पड़ जाते हैं। इस माहौल में आशिया लगातार एक अंतर्द्वंद्व से गुजरती रहती है और अंत में इस अंतर्द्वंद्व से बाहर निकल अपने अस्तित्व को आधार प्रदान कर नौकरी करने का फैसला करती है। दरअसल ज्यादातर मामलों में हमारी प्रगतिशीलता परंपरावादी रवैये से बाहर नहीं आ पाती है। यही कारण है कि यह प्रगतिशीलता खोखला आदर्शवाद लगने लगती है। यह कहानी इस खोखली प्रगतिशीलता पर कई सवाल खड़े करती है। 'मुहल्ला, गोबर और थाना' शीर्षक कहानी लगभग हर मुहल्ले की कथा है। इस कहानी के पात्र ज्यादातर मुहल्लों में पाए जाते हैं। ऐसे पात्र बहुत आसानी से दूसरों की सीमा में प्रवेश कर एक नया महाभारत रचने में माहिर होते हैं। इस कहानी में एक तरफ हास्य और व्यंग्य विद्यमान है तो दूसरी तरफ पुलिस की परंपरावादी छवि पर प्रहार भी किया गया है। लेखक की भाषा एक साथ कई तीर छोड़ती है। भाषा की रवानगी और किस्सागोई की कला इस कहानी को और सशक्त बनाती है।

'चंदन और थर्मोकोल' शीर्षक कहानी इस दौर की भोगवादी संस्कृति का सटीक चित्रण करती है। कहानी यह सवाल भी खड़ा करती है कि क्या हमारे प्राचीन नैतिक मूल्य केवल भाषणबाजी की चीज रह गए हैं? जुगाड़बाजी के इस दौर में ईमानदार आदमी स्वयं को पिछड़ा हुआ महसूस करता है। अकादमिक अथवा शिक्षा के क्षेत्र में भी हथकंडे अपनाकर आगे बढ़ने की प्रवृत्ति बढ़ी है। इस समय का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही है कि नैतिकता के बल पर प्रगति करने वाले लोगों की संख्या लगातार घटती जा रही है। यह कहानी नैतिकता को दरकिनार कर मस्ती और आनंद को सबसे बड़ा मूल्य मानने वाले समाज का सटीक खाका खींचती है।

'रूपांतरण' शीर्षक कहानी गाँव की उस ओछी राजनीति पर केंद्रित है जिसके अंतर्गत स्वर्ण जातियाँ मजबूरी में दलितों को ग्राम प्रधान बनवाकर उन्हें मोहरे के रूप में इस्तेमाल करती हैं। कभी-कभी कोई ग्राम प्रधान पद अनुसूचित जाति या अनुसूचित जाति की महिला के लिए आरक्षित हो जाता है। ऐसी स्थिति में सवर्ण जातियों के लिए दलितों को स्वीकारना मजबूरी हो जाती है, लेकिन उनकी मंशा दलितों को अपने इशारे पर नचाने की होती है। इस माहौल में जब कोई दलित, सवर्णों के चक्रव्यूह को तोड़कर स्वयं निर्णय लेता है तो एक बड़ा बदलाव होता है। बहरहाल हरपाल सिंह 'अरुष' इन कहानियों के जरिये मनुष्यता के चेहरे पर लगे मुखौटे को बखूबी उतारते हैं। उनकी भाषा में भी विविधता दिखाई देती हैं। यथार्थवादी दृष्टिकोण इन कहानियों को सशक्त बनाता है, इसीलिए ये कहानियाँ खुद सवाल उठाती हैं।

समीक्षक : **सुधांशु गुप्ता**

लेखक : **डॉ. सुधा शर्मा 'पुष्प'**

प्रकाशक : सूर्य भारती प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली।

पृष्ठ : 128

मूल्य : रु. 300/-

तेरे चरणों में

(बाल एकांकी संग्रह)

पता नहीं क्यों हमें लगता है कि बच्चों के साहित्य का अर्थ होता है—उन्हें प्रवचन देना, उनके भीतर संस्कार, संस्कृति और नैतिक मूल्यों को प्रवाहित करना। यही वजह है कि बाल साहित्यकार इस धारा पर चलते हुए यह भूल जाते हैं कि प्रवचन सुनना बच्चों को कतई पसंद नहीं होता, बल्कि वे कुछ हद तक उनसे चिढ़ते हैं। जब भी ये प्रवचन आरोपित होते हैं तो बच्चों की इनमें रुचि खत्म हो जाती है। बाल साहित्य लिखते समय हमारे सामने पहला उद्देश्य यही रहता है कि अपनी कहानी, कविता या बाल एकांकी के लिए हमें बच्चों को क्या संदेश देना है। ऐसे में संदेश अहम हो जाता है और रचना जाने-अनजाने पार्श्व में चली जाती है। यह संदेश कितने बच्चों तक पहुँचता होगा, यह बच्चे ही जानते हैं। हाल ही में बाल एकांकी संग्रह—'तेरे चरणों में' पढ़ने का अवसर मिला। डॉ. सुधा शर्मा 'पुष्प' मुख्य रूप से बाल एकांकी ही लिखती हैं और उनका मंचन भी करवाती हैं। इस संग्रह में उनके लिखे 11 एकांकी हैं, जिनके माध्यम से लेखिका भारतीय जीवन मूल्य, संस्कार, मानवीयता, पर्यावरण रक्षा जैसी बातें बच्चों को सिखाना चाहती हैं। लेखिका स्वयं यह बात स्वीकार करती हैं कि श्रव्य माध्यम की अपेक्षा दृश्य माध्यम सदा से अधिक प्रभावशाली रहा है। सिनेमा, टीवी, इंटरनेट की बढ़ती लोकप्रियता, इसका साक्षात प्रमाण है। नन्हा बच्चा भी इनके प्रति तुरंत आकर्षित हो जाता है इसलिए बच्चों को किसी भी प्रकार का ज्ञान, संदेश या मार्गदर्शन देने के लिए एकांकी अत्यंत उपयुक्त माध्यम है।

यानी यह स्पष्ट है कि ये सभी एकांकी किसी उद्देश्य को लेकर लिखे गए हैं। संग्रह का पहला एकांकी शुभारंभ सूत्रधार के श्लोक के साथ शुरू होता। हम देखते हैं कि कुछ बच्चे खेल रहे हैं तभी वहाँ डाकिया आता है। वह एक बच्चे से हस्ताक्षर करवाकर उसे एक कार्ड देता है। कार्ड में नए साल की शुभकामनाएँ हैं। दादा बच्चों को भारतीय कैलेंडर के बारे में बताते हैं कि उसके अनुसार नया साल कब आता है और इस कैलेंडर के अनुसार महीनों के नाम क्या होते हैं। बच्चे रुचि लेकर सब सुनते हैं। लेखिका ने इस एकांकी के माध्यम से बच्चों को भारतीय परंपरा से जोड़ने की कोशिश की। संभव है कुछ बच्चे इस एकांकी के माध्यम से भारतीय कैलेंडर में रुचि लेने लगें और वे इसके प्रति जागृत हों। लेकिन आज के युग के बच्चों के लिए क्या यह सब इतना आसान होगा? 'आरोप नहीं, समाधान' एकांकी में पृथ्वी को बचाने का आह्वान है। बिलकुल सहज रूप से एकांकी की शुरुआत होती है जिसमें कुछ बड़ी उम्र के बच्चे पृथ्वी दिवस की बात कर रहे हैं। एक बच्चा कहता है, हम सब इस पृथ्वी पर चलते हैं, कूदते हैं, इसे खोदते हैं, इस पर गंदगी डालते हैं, किंतु धरती बदले में हमें अन्न, जल, वायु, वस्त्र, आवास देती है। लेकिन धरती का अहसान मानने के बदले हम इस पर अत्याचार करने लगे हैं। यहाँ से हिरण्याक्ष की कथा उभरती है, जिसमें बताया गया है कि किस तरह उसने धरती को अपने पैरों से इतना दबाया कि धरती समुद्र में चली गई। फिर विष्णु भगवान ने वराह का रूप धारण करके हिरण्याक्ष से युद्ध किया और धरती को मुक्त कराया। इसके बाद प्रतीकात्मक रूप में धरती को नष्ट करने के दृष्य उभरते हैं। कहीं धरती पर धुआँ फैल रहा है, कहीं वनों को काटा जा रहा है, कहीं खेतों में रासायनिक तथा विषैले खाद्य का प्रयोग हो रहा है, कहीं नदियों में कचरा और रासायनिक तत्व डाले जा रहे हैं, धरती खुद को बचाने का प्रलाप करती है और क्रमशः सब स्वीकार करते हैं कि अब वे धरती को नष्ट करने वाले कोई भी काम नहीं करेंगे। लगभग सभी एकांकियों में एक समस्या है और उसका समाधान है। कर्म ही धर्म है, भगाओ बाबा-बुलाओ बाबा, पहले घर से, फिर जग से, क्या नहीं, कैसा!, सामान्य से विशेष, झगड़ा कबहूँ न कीजिए, तेरे चरणों में, और मिल बाँटकर... सभी एकांकियों में डॉ. सुधा शर्मा भारतीय और जीवन मूल्यों को बच्चों में प्रवाहित करने की कोशिश करती हैं।

ये एकांकी पाठकों को कहीं भी बेचैन नहीं करते, न ही आपके सामने कोई सवाल खड़े करते हैं, पढ़ते समय ही पाठक यह समझ जाता है कि इन एकांकियों में ही हर समस्या का समाधान भी सुझाया गया है, बल्कि पहले वाक्य या पहले दृश्य से ही बच्चों को समझ आ जाता है कि एकांकी की दिशा क्या है। बच्चों के लिए लिखना सबसे कठिन काम होता है, जब तक विषय पूरी सहजता से नहीं आएगा तब तक बच्चों को समझाना आसान नहीं होगा।

गांधी और स्वास्थ्य @150

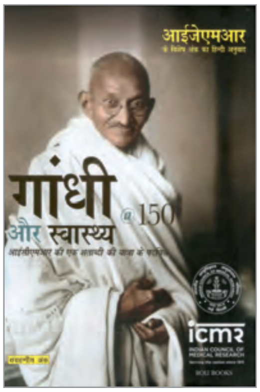

समीक्षक : **अनुपमा**

अतिथि संपादक : **डॉ. रजनी कांत, डॉ. ए. अन्नामलाई एवं डॉ. अभय बंग**

हिंदी संपादन : **डॉ. कृष्णानंद पांडेय**

प्रकाशक : रोली बुक्स, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 182

मूल्य : उपलब्ध नहीं

महात्मा गांधी, राष्ट्र-निर्माता, राजनेता, शांति के प्रचारक और समाजसेवी के अलावा एक पर्यावरणविद् और विज्ञान के चिंतक भी थे। स्वास्थ्य और जीवन-शैली को लेकर उनका स्वतंत्र नजरिया था जो अधिकांशतः वैज्ञानिक दृष्टिकोण और वैज्ञानिक चिंतन पर आधारित था।

भारत की आजादी से पहले स्थापित स्वास्थ्य शोध संस्था भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद (आईसीएमआर) की सन् 1913 से प्रकाशित होने वाले शोध जर्नल 'इंडियन जर्नल ऑफ मेडिकल रिसर्च' (आईजेएमआर) ने महात्मा गांधी की 150वीं जन्म वर्षगाँठ के मौके पर एक संग्रहणीय संस्करण हिंदी भाषा में प्रकाशित किया है।

स्वास्थ्य, स्वच्छता, जीवन-शैली, आहार, प्राकृतिक चिकित्सा, क्षयरोग, कुष्ठरोग, अस्पृश्यता और पर्यावरण के संबंध में गांधीजी के विचारों पर विशेषज्ञों के महत्वपूर्ण आलेख सहित इस खास पुस्तक में राष्ट्रपिता के स्वास्थ्य संबंधी विवरण के प्रामाणिक रिकॉर्ड दर्ज हैं। इस महत्वपूर्ण पुस्तक में कुल 20 लेख हैं। यह पुस्तक और विषयवस्तु लीक से हटकर है तथा इसकी विषय सामग्री में से अधिकांश जानकारी पब्लिक डोमेन में अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं है। इस मायने में यह दस्तावेज नितांत अनोखा है।

पुस्तक के संपादकीय में पुस्तक की रूपरेखा और समग्र विषयवस्तु के केंद्रीय विचार को तरतीब से प्रस्तुत किया गया है।

आरंभिक तीन अध्याय गांधी जी के स्वास्थ्य से जुड़े प्रयोगों, उनकी चिकित्सा विरासत और गांधीवादी नैतिक मूल्य एवं स्वास्थ्य से उनके संबंधों पर केंद्रित हैं। उसके आगे के अध्यायों में स्वच्छता, कुष्ठरोग, क्षयरोग, पर्यावरण केंद्रित गांधीवादी दृष्टि, भोजन व आहार, जीवन-शैली से जुड़े रोग, तंबाकू और मद्यपान पर गांधी जी के महत्वपूर्ण विचारों को विद्वान लेखकों द्वारा उकेरने का प्रयास किया गया है।

गांधी जी स्वास्थ्य, स्वच्छता, पर्यावरण जैसे मुद्दों पर बेबाक राय रखते थे और उन सबका अपने जीवन में अनुपालन भी करते थे। उन्होंने स्वास्थ्य, स्वच्छता और सफाई के महत्व पर हमेशा बल दिया जिनकी प्रासंगिकता आज भी उतनी ही है। उन्होंने कहा था कि स्वास्थ्य सबसे बड़ी पूँजी है न कि सोना या चाँदी। उनका स्पष्ट मानना था कि अगर हम अपने आस-पास के वातावरण को स्वच्छ और सेहतमंद रखते हुए उपयुक्त आहार के साथ संयमित जीवनयापन करते हैं तो हम अनेक बीमारियों से दूर रह सकते हैं। वे अपने भोजन और आहार के साथ प्रयोग किया करते तथा शारीरिक व्यायाम व गतिविधि को महत्व दिया करते थे। वे शाकाहार को बढ़ावा देते और शराब-तंबाकू के सेवन के सख्त खिलाफ थे।

जब गांधी जी डरबन में थे, तभी से उन्होंने अपने जीवन में साधारण आदतों को अपनाना शुरू किया था। बाजार के आटे के बजाय वे घर में पिसे गेहूँ के आटे का प्रयोग करते थे और इसके लिए उन्होंने हाथ से चलने वाली एक चक्की (हैंड मिल) खरीद ली थी। वे अकसर कहा करते थे कि व्रत और आहार में कटौती जीवन का बेहद महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। वे कहते थे कि व्रत, स्वयं में भोग और संयम का एक सशक्त औजार होता है। उनका स्पष्ट मत था कि स्वाद के अनुसार नहीं, बल्कि जीवन व शरीर को ऊर्जा देने के लिए भोजन करना चाहिए। लाखों भारतीयों के लिए गांधी जी का यह नुस्खा आज भी प्रासंगिक है 'किफायत से खाएँ, कभी-कभी उपवास रखें, अधिक खाने के बजाय शारीरिक व्यायाम पर ध्यान दें'।

गांधी जी के स्वास्थ्य का सर्वाधिक श्रेय उनके शाकाहार और खुली हवा में व्यायाम को जाता है। लंदन में अपने विद्यार्थी जीवन के समय से, वे प्रतिदिन मीलों पैदल चलते थे और जीवन के अंतिम समय तक पैदल टहलना उनकी दिनचर्या का हिस्सा बना रहा। 1947 में उन्होंने कहा था कि बौद्धिक कार्यों में लगे हुए लोगों को भी शारीरिक कार्य करना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से उनके बौद्धिक चिंतन की गुणवत्ता में सुधार आएगा।

इस पुस्तक के एक अध्याय में जिक्र है कि गांधी जी जीवनपर्यंत स्वच्छता, विकासशील गाँव, शारीरिक गतिविधि, मानसिक सामर्थ्य, स्वस्थ माँ और बच्चे, आहार संबंधी आदतें और बीमार लोगों की सेवा से जुड़े कार्यों में लगे रहे। उनके समय की अपेक्षा आज पूरे विश्व में स्वास्थ्य की स्थिति काफी कुछ बदल गई है, लेकिन गांधी जी के अधिकांश विचार आज भी प्रासंगिक हैं।

महात्मा गांधी जीव और पर्यावरण के संरक्षण को लेकर बेहद चिंतित और प्रतिबद्ध रहते थे। उनकी सर्वोदय की संकल्पना और मौजूदा सतत् विकास में काफी समानताएँ हैं। वे पर्यावरणीय नैतिकता की बात करते थे और सर्वोदय से उनका आशय एक स्वस्थ पर्यावरण और विकास से जुड़ा हुआ था जिन्हें प्रकृति तथा अन्य जीवधारियों के साथ मनुष्य के सामंजस्यपूर्ण सह-अस्तित्व के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने जिन बातों की शिक्षा दी और जिन सिद्धांतों को जीवन में उतारा, उन्हें आज हम पर्यावरण अनुकूल उपाय और प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवनयापन कहते हैं।

समीक्षक : **अनिता रश्मि**

लेखिका : **शोभा माथुर ब्रिजेन्द्र**

प्रकाशक : प्रतिमा प्रकाशन, दिल्ली।

पृष्ठ : 352

मूल्य : रु. 895/-

मैं युद्ध अपराधी नहीं

दो खंडों में समाहित इस वृहद पुस्तक में महान देशभक्त, क्रांतिवीर सुभाष चंद्र बोस जैसे जीवित हो उठे हैं और कह रहे हैं—"मैं युद्ध अपराधी नहीं!" लेखिका शोभा माथुर ब्रिजेन्द्र ने बारीकी से एक-एक संबंधित पहलू का विश्लेषण इस पुस्तक में प्रस्तुत किया है। सारे प्रसंगों, महत्वपूर्ण भागों से मिलकर बोस की पूरी जिंदगी, संघर्ष, कर्तव्यबोध और उनसे जुड़े विवादों को समझा जा सकता है। पुस्तक गुप्त फाइलों में छिपी नेता जी के जीवन से संबंधित कुछ ज्ञात-अज्ञात रहस्यों का खुलासा करने का दावा भी करती है। बहुत सावधानीपूर्वक निरपेक्ष होकर रची गई इस किताब में कई अनखुले राज भी खुले हैं।

आसान नहीं था, किसी भारतीय का जर्मन-जापान में धाक जमाना। नेता जी के करिश्माई व्यक्तित्व और मेहनत, लगन ने उसे आसान बनाया था। कितने स्वतंत्रताप्रेमी उनके एक आह्वान पर सिर कटाने को तैयार थे। स्वयं सुभाष चंद्र बोस सिर पर कफन बाँधकर चलते रहे। आजादी के दीवानों का साथ मिलता गया।

बिन तेरे देश की दास्ताँ दोहराई नहीं जाती, राष्ट्र प्रेम का उदय, सुभाष के उद्गार, जर्मनी की तरफ कदम बढ़ाए, आजाद हिंद फौज, खतरों से भरी यात्रा, संघर्ष का आखिरी दौर, सुभाष चंद्र बोस क्या युद्ध अपराधी थे, जहाज के पीछे गुप्तचर थे, खोसला आयोग, मुखर्जी आयोग, फैजाबाद के गुमनामी बाबा, मुझे रूस ने नजरबंद क्यों किया? शौलमारी आश्रम में कौन था?...इनमें गुँथी है उनके जीवन की अनुकरणीय कथा। नेता जी चाहते तो ठाठ से वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकते थे। वे आई.सी.एस. की डिग्री पा चुके थे फिर भी उन्होंने देश सेवा, त्याग, संघर्ष का रास्ता चुना।

उन्होंने गांधी जी के अहिंसक आंदोलन से परे जाकर हिंसा का मार्ग अपनाया था। वे समझ चुके थे, आततायी-क्रूर अंग्रेज मीठी भाषा नहीं समझते। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय खुद हिल चुके ब्रिटेन के खिलाफ ऐसे हिंसक आंदोलनों का यही समय सही था, इसे भी बोस पूरी तरह समझ चुके थे। हिंसक आंदोलन के लिए गांधी जी को भी आश्वस्त करने में वे सफल रहे थे।

उनकी मौत एक रहस्य बनकर रह गई। इसमें फैजाबाद के गुमनामी बाबा, जहाज दुर्घटना में मौत आदि अटकलों को खोलने की कोशिश भी नजर आती है। शौलमारी आश्रम में सुभाष के रहने की चर्चा आम थी। नेहरू जी के साथ अधिकांश का मत एक है कि उक्त आश्रम के संत वास्तव में नेता जी हैं। अनगिन अटकलें...अनगिन उम्मीदें।

मानवता और देश सेवा का कठोर व्रत लेने वाले ऐसे दुर्लभ क्रांतिवीर पर लिखी इस पुस्तक में नेता जी के परिजनों के बयान भी हैं। सुभाष चंद्र बोस के परिवारवालों के बयान का अपना महत्व है। वे वास्तविकता से परिचित होना चाहते हैं। उनकी मौत की गुत्थी समझना चाहते हैं। देश के सबसे चमचमाते प्रिय सितारे के बारे में जानने का पूरा हक उनके परिजनों संग पूरे देशवासियों को है।

बहुचर्चित नारा 'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा' देने वाले सुभाष चंद्र किसी परिचय के मोहताज नहीं, लेकिन हम भारतीय बहुत भुलक्कड़ हैं। विस्मृति हमारी अतिरिक्त खासियत है। अतः ऐसे समय में शोभा जी का यह सत्प्रयास हम भारतीयों की याददाश्त दुरुस्त रखने का काम करेगा।

एक सामान्य व्यक्ति से क्रांति की मशाल जलाने वाले वीर की यह कथा बहुत रोचक शैली में लिखी गई है। कितना भी महत्वपूर्ण हो, पर किताब में पठनीयता का गुण न हो, तो वह सभी पाठकों को आकर्षित नहीं कर सकती है। यह पुस्तक नेता जी, आजाद हिंद फौज की स्थापना, उसके क्रिया-कलाप, विदेशों में भी क्रांति की ज्योति जलाने की बात को पठनीय कथात्मक शैली में कहती है।

तेरा होना तलाशूँ

समीक्षक : **डॉ. जियाउर रहमान जाफरी**

लेखक : **विनय मिश्र**

प्रकाशक : लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, नई दिल्ली

पृष्ठ : 120

मूल्य : रु. 250/-

इन दिनों हिंदी कविता में सबसे अधिक चर्चा हिंदी ग़ज़ल की है। आज हिंदी ग़ज़ल को जो लोग इस मुकाम पर लाए हैं, उसमें एक महत्वपूर्ण नाम विनय मिश्र का भी है। विनय मिश्र हिंदी के समर्पित ग़ज़लगो हैं जिनके पास ग़ज़ल वाला लहजा भी है। वो ग़ज़ल में उन विषयों को उठाते हैं जिसका संबंध रोजमर्रा की जिंदगी से है। उनके अधिकतर शेर छोटी बहर में लिखे गए हैं, लेकिन उसमें शरीयत में कोई कमी नहीं आई है।

तेरा होना तलाशूँ उनकी गज़ल की दूसरी किताब है। इस बीच उन्होंने दोहा और गज़ल की आलोचना पर भी बेहतर काम किया है।

लगभग एक सौ पाँच गज़लों की यह किताब हिंदी गज़ल की दावेदार को बेहतर तरीके से रखती है। जब शायर अपने पहले ही शेर में कहता है—

वो रंजिश में नहीं अब प्यार में है
मेरा दुश्मन नए किरदार में है

तो वो समाज के नब्ज को बेहतर तरीके से पकड़ता है। उसे पता है कि हमारे साथ बड़ी मोहब्बत से पेश आने वाला आदमी अंदर से क्या इरादा रखता है। कभी अहमद फराज ने कहा था..."जब देखना किसी को कई बार देखना..."

आदमी आज भीड़ रहते हुए भी अकेलापन का शिकार है। जिंदगी की तेज रफ्तार में किसी के पास किसी के लिए फुरसत नहीं है। विनय साहब कहते हैं...

अकेले जिंदगी जीनी पड़ी है
यहाँ इस बात की चर्चा बड़ी है

विनय मिश्र हिंदी गज़ल के शायर हैं, लेकिन वो उस खेमे के नहीं हैं जिन्होंने हिंदीपन में अपनी गज़लें बिगाड़कर रख दी। वो ईमानदारी से उन सब शब्दों का प्रयोग करते हैं जो उनके शेर में बोलता है।

इस अनमोल कृति से हिंदी गज़ल और भी मजबूत हुई है।

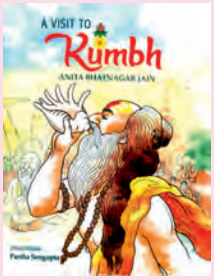

अनीता भटनागर जैन द्वारा लिखित और राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से प्रकाशित 'ए विजिट टू कुंभ' पुस्तक एक अच्छी पुस्तक है। प्रस्तुत पुस्तक 'कुंभ' की कहानी और यह मेला क्यों लगता है, पर बात करती है। यह हमारे इतिहास के बहुत महत्वपूर्ण भाग जैसे 'अमृत मंथन' के बारे में और चारों कुंभ मेलों की शुरुआत कैसे हुई, पर मनोरंजक ढंग से वर्णन करती है। मेरी उम्र के या फिर मुझसे बड़े बच्चे जो यह समझते हैं कि इतिहास नीरस विषय है, मैं भी उनमें से एक था, लेकिन इस पुस्तक ने मेरा दृष्टिकोण बदल दिया। अब भारतीय इतिहास और विश्व संस्कृति मेरा प्रिय विषय है।

एकाक्षा राठी वर्मा

दिल्ली पब्लिक स्कूल, नोएडा द्वारा समीक्षा

सूचना

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के दक्षिणी कार्यालय का नया पता—

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
पुस्तक प्रोन्नयन केंद्र व
एनबीटी हैदराबाद पुस्तक विक्रय केंद्र
जी 2-6, भू-तल, गृहकल्प कॉम्प्लेक्स,
गांधी भवन के सामने, एमजे रोड, नामपल्ली,
हैदराबाद-500001 तेलंगाना
फोन : 040 - 27077333
ई-मेल : sro.nbt@nic.in
bpc.hyderabad@nbtindia.nic.in

घोषणा-फार्म - 4 (नियम 8 देखिए)

पुस्तक संस्कृति (द्विमासिक)

1.	**प्रकाशन स्थल**	:	नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, फेज-II, नई दिल्ली-110070
2.	**प्रकाशन अवधि**	:	द्विमासिक
3.	**मुद्रक का नाम**	:	अनुज कुमार भारती, द्वारा राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
	नागरिकता	:	भारतीय
	पता	:	राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, फेज-II, नई दिल्ली-110070
4.	**प्रकाशक का नाम**	:	राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
	नागरिकता	:	भारतीय
	पता	:	नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, फेज-II, नई दिल्ली-110070
5.	**संपादक का नाम**	:	पंकज चतुर्वेदी
	नागरिकता	:	भारतीय
	पता	:	नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, फेज-II, नई दिल्ली-110070
6.	**पत्रिका का स्वामित्व**	:	राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

शिक्षा मंत्री श्री रमेश पोखरियाल 'निशंक' को मिला वातायन सम्मान

माननीय केंद्रीय शिक्षा मंत्री श्री रमेश पोखरियाल 'निशंक' को साहित्य के क्षेत्र में योगदान के लिए वातायन लाइफटाइम एचीवमेंट पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। उन्हें यह पुरस्कार इंग्लैंड में ब्रिटिश इंस्टीट्यूशन ग्रुप द्वारा वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से आयोजित वातायन-ब्रिटेन सम्मान समारोह में प्रदान किया गया। इस अवसर पर श्री निशंक ने कहा कि विविधता में एकता ही भारत की पहचान है। हमारी संस्कृति में भाषाओं का विशेष महत्व है। हर संस्कृति की एक भाषा होती है और प्रत्येक भाषा की अपनी संस्कृति होती है तथा दोनों एक-दूसरे से जुड़ी होती हैं।

हरियाणा की ग्राम पंचायतों में पुस्तकालय स्थापित करेगा न्यास

माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी और माननीय शिक्षा मंत्री श्री रमेश पोखरियाल 'निशंक' की महत्वाकांक्षी योजना—नॉलेज कम्युनिकेशन सेंटर (केसीसी) के कार्यान्वयन के तहत राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत हरियाणा सरकार के सहयोग से छह हजार से अधिक ग्राम पंचायतों में पुस्तकालय स्थापित करेगा। योजना के अंतर्गत हरियाणा की सभी ग्राम पंचायतों में पुस्तकालयों के साथ ही रीडर्स क्लब भी स्थापित किए जाएँगे। हरियाणा के मुख्यमंत्री श्री मनोहर लाल खट्टर की अध्यक्षता में चंडीगढ़ में आयोजित बैठक में न्यास के निदेशक श्री युवराज मलिक ने केसीसी प्रोजेक्ट प्रस्तुत करते हुए कहा कि ग्राम पंचायतों में पुस्तकालयों की स्थापना ज्ञान संचालित समाज में सामाजिक-आर्थिक बदलाव लाएगा। न्यास इस महती कार्य में नोडल एजेंसी की भूमिका निभाएगा।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत में मनाया गया संविधान दिवस

संविधान दिवस, 26 नवंबर, को राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के सभागार में, 'भारत का संविधान' की 'उद्देशिका' के पठन/वाचन कार्यक्रम का आयोजन किया गया। न्यास के निदेशक श्री युवराज मलिक ने न्यासकर्मियों को संविधान की उद्देशिका का वाचन करवाया।

न्यास-निदेशक श्री युवराज मलिक ने न्यासकर्मियों को संविधान की 'उद्देशिका' का वाचन करवाने के पश्चात्, संक्षेप में, संविधान दिवस के उद्देश्य और महत्व पर अपने विचार व्यक्त किए। उन्होंने कहा कि "उद्देशिका का बिलकुल पहला शब्द 'हम, भारत के लोग,' इस उद्देशिका का सबसे खूबसूरत शब्द है। इसमें सबको साथ लेकर चलने की बात कही गई है। इस तरह, यह सर्वसमावेशी भाव को अपने अंदर समाहित किए हुए है।" उन्होंने आगे कहा कि "इस उद्देशिका को पढ़ने पर हमारे भीतर जिम्मेवारी के भाव का अहसास होता है। इससे हमें फैसले लेने में भी आसानी होती है। वस्तुतः, यह एक दर्पण है जिसमें भारत राष्ट्र अपना चेहरा देख सकता है।" निदेशक महोदय ने अपने संक्षिप्त, किंतु सारगर्भित संबोधन में कहा कि भारत के हर नागरिक के लिए राष्ट्र प्रथम होना चाहिए। राष्ट्र के हित में भावनाओं से फैसले नहीं लिए जाते।

अपने संबोधन में निदेशक महोदय ने मुंबई में हुए 26/11 की घटना को भी याद किया और इस घटना में प्राणोत्सर्ग करने वाले पुलिस अधिकारियों की याद में न्यासकर्मियों के साथ एक मिनट का मौन रखकर उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

बाल प्रकाशन पर वेबिनार

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के अंतर्गत स्वायत्त निकाय राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत में 08 दिसंबर, 2020 को बाल प्रकाशन में सज्जा, लेआउट और मूल्य पर एक वेबिनार आयोजित किया गया जिसमें न्यास के अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा; न्यास के निदेशक श्री युवराज मलिक; राष्ट्रीय डिजाइन संस्थान, अहमदाबाद की वरिष्ठ प्राध्यापक सुश्री तनिश्का काचरू; प्रख्यात चित्रकार श्री अतनु रॉय; लेखक-संपादक सुश्री मनीषा चौधरी; प्रकाशक श्री प्रणव सिंह के अलावा न्यास कर्मियों ने सक्रिय सहभागिता की।

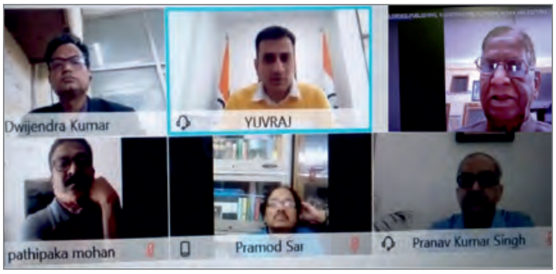

न्यास के अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा ने कहा कि पुस्तक की डिजाइन, लेआउट और मूल्य के अलावा विषयवस्तु का चयन अति महत्वपूर्ण है। ऐसी पुस्तकें प्रकाशित की जानी चाहिए जो एक बालक की सोच, दूरदृष्टि, उत्कंठा और ज्ञान को विस्तार दें। न्यास-निदेशक श्री युवराज मलिक ने अपने संबोधन में किफायती मूल्य पर पुस्तक पाठन परंपरा की आवश्यकता पर जोर दिया ताकि आर्थिक रूप से कमजोर बच्चों तक पुस्तकों की पहुँच सुनिश्चित की जा सके। उन्होंने कहा कि विषयवस्तु की गुणवत्ता में समझौता किए बिना न्यास उत्पादन कीमतों को कम करने का प्रयास कर रहा है।

सरदार पटेल कोविड सेंटर में 'पुस्तक संस्कृति' बनी लोकप्रिय

कोरोना महामारी में एकांतवास के दौरान नैराश्य जीवन से बाहर निकलने में पुस्तकों ने महती भूमिका निभाने के साथ ही ज्ञानावर्धन भी किया है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने देश के सबसे बड़े कोविड-19 सेंटर 'सरदार पटेल कोविड केयर सेंटर, छतरपुर, दिल्ली' में मरीजों के लिए लाइब्रेरी जुलाई 2020 में खोली थी जिसमें न्यास की प्रकाशित पुस्तकों के साथ-साथ साहित्यिक व सांस्कृतिक द्विमासिक पत्रिका 'पुस्तक संस्कृति' खासी लोकप्रिय है।

पाठकीय प्रतिक्रिया

साहित्य और संस्कृति की द्विमासिक पत्रिका 'पुस्तक संस्कृति' का सितंबर-अक्तूबर 'शिक्षा विशेषांक' पढ़ने का अवसर मिला। धन्यवाद! साहित्यिक गतिविधियाँ, विश्व के सबसे बड़े क्वारेंटाइन सेंटर में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की पुस्तकें विशेष रूप सराहनीय हैं। उपन्यास 'कोचिंग@कोटा', 'स्वयंप्रकाश की संकलित कहानियाँ' का सारांश आकर्षित करता है। कहानी कहने की कला, संपादन : पंकज चतुर्वेदी; खेल-खेल में बच्चों का विकास : मीना स्वामीनाथन; प्रेमा डैनियल की पुस्तकें आज के अभिभावकों के लिए उपयोगी हैं।

पुस्तक संस्कृति के प्रधान संपादक प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 पर संक्षेप में लिखे संपादकीय में कम शब्दों में बहुत सारी जानकारियाँ मिलीं। प्रधान संपादक को हृदय से धन्यवाद!

श्री रमेश पोखरियाल 'निशंक', माननीय मानव संसाधन विकास मंत्री का आलेख 'ताकि शिक्षा सही राह बढ़ती रहे' शिक्षा और कोरोना पर लिखा महत्वपूर्ण आलेख है।

डॉ. मंजू देवी, वाराणसी

'पुस्तक संस्कृति' पत्रिका का नवंबर-दिसंबर अंक प्राप्त हुआ। प्रधान संपादक प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा का संपादकीय—'राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 : दिशा और दृष्टि' और डॉ. योगेन्द्र नाथ शर्मा का आलेख 'लॉर्ड मैकाले की कैद से बचपन को मुक्ति दिलाती नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति' विचारणीय आलेख है।

कालिदास बा. मराठे, फोंडा, गोवा

पुस्तकें मिलीं

अँधेरे में टिमटिमाता चिराग : मलाला

शोभा माथुर ब्रिजेन्द्र

तालिबानियों के डर से जब पाकिस्तान के स्वात घाटी की लड़कियों ने स्कूल जाना छोड़ दिया तब भी मलाला स्कूल जाती रही। इसकी कीमत उसे गोली खाकर चुकानी पड़ी। घायल मलाला इलाज से ठीक हो गई और बाद में उसे शांति का नोबेल पुरस्कार मिला। मलाला आज पूरे विश्व की लड़कियों का रोल मॉडल हैं। एक उपन्यासपरक जीवनी।

प्रतिमा प्रकाशन, दिल्ली-110092।

पृ. 68; रु. 125.00

प्रदूषण मुक्त सांसें

योगेश कुमार गोयल

विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों से विश्व पर्यावरण आज खतरे में है। जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण आदि अनेक प्रदूषणों से यह धरती बेहद जहरीली हो गई है। प्लास्टिक कचरा, ओजोन परत का पतला होना, हिमालय पर प्रदूषण की मार आदि चिंतनीय विषय भी पुस्तक के भाग बने हैं। लेखक ने न केवल प्रदूषण के विभिन्न आयामों पर चर्चा की है, बल्कि उसके समाधान भी सुझाए हैं।

मीडिया केयर नेटवर्क, नई दिल्ली।

पृ. 190; रु. 260.00

कर्तव्यनिष्ठ लक्ष्मण

डॉ. विनय

रामकथा में प्रत्येक पात्र किसी-न-किसी जीवन-दृष्टि या जीवन-मूल्य को भी प्रतिपादित करता है। राम यदि आदर्श पुत्र और पति हैं तो लक्ष्मण आदर्श भाई के रूप में प्रतिष्ठापित हैं। इस पुस्तक में लक्ष्मण की अपने भाई के प्रति उत्कट कर्तव्यनिष्ठता को दर्शाया गया है।

डायमंड बुक्स, नई दिल्ली।

पृ. 152; रु. 150.00

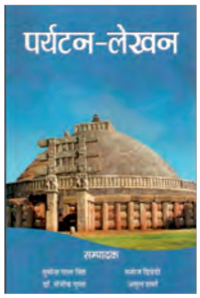

पर्यटन-लेखन

संपादक : **पुष्पेन्द्र पाल सिंह, डॉ. संजीव गुप्ता, मनोज द्विवेदी, अतुल शर्मा**

देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं शिक्षण संस्थानों में मीडिया पाठ्यक्रम में अध्ययनरत ऐसे अनेक विद्यार्थी हैं, जो कि पर्यटन-लेखन में रुचि रखते हैं या इस क्षेत्र में ही अपना करिअर बनाना चाहते हैं। पर्यटन क्षेत्र में कार्य कर चुके लेखक, पत्रकार आदि प्रशिक्षु पर्यटन-लेखकों के लिए मार्गदर्शिका के रूप में इस पुस्तक का संकलन-संपादन किया गया है।

इंद्रा पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।

पृ. 188; रु. 250.00

आकाश में कोरोना घना है...

(कोरोना केंद्रित कहानी संग्रह)

संकलन व संपादन : **गौरव अवस्थी**

कोरोना महामारी के कारण लॉकडाउन में बंद समाज अपनी सहज-स्वाभाविक सामाजिकता से कट गया है। कोरोना जैसी आपदा मानव इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना है जिसने मानव मात्र को बंद कमरे का यात्री बना दिया है। कोरोना काल की अनेक घटनाएँ, त्रासदियाँ कहानी रूप में ढलकर इस पुस्तक में आई हैं।

लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।

पृ. 132; रु. 150.00

एक और दिन का इज़ाफ़ा

भगवती प्रसाद द्विवेदी

समय-संदर्भ, देश-काल और सामाजिक सरोकारों के कवि अपने समय के विडंबना बोध के भी कवि हैं जिनकी कविताओं में समकालीन विसंगतियाँ और विद्रूपताएँ स्वयंमेव एवं सहज ही अपनी जगह बना लेती हैं। सच्चा कवि सामाजिक विडंबनाओं को उद्घाटित करता है। इस संग्रह में इन चीजों को सहज ही देखा जा सकता है।

अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर।

पृ. 152; रु. 300.00

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की द्विमासिक पत्रिका

पुस्तक संस्कृति

के सदस्य बनें

सदस्यता प्रपत्र

नाम : ____________________

पता : ____________________

जिला : __________ शहर __________ राज्य __________ पिन कोड __________

फोन : __________ ई-मेल : __________

मैं राशि रु. (अंतर्देशीय : 225/- रु.; अंतर्राष्ट्रीय : 1000/- रु.) __________ वार्षिक सदस्यता हेतु (बैंक ड्राफ्ट/नगद) __________ ड्राफ्ट संख्या __________ बैंक एवं शाखा द्वारा जारी __________ भेज रहा/रही हूँ (संलग्न)।

सदस्यता शुल्क बैंक ड्राफ्ट द्वारा (नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के पक्ष में देय), सदस्यता प्रपत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेजें :

संपादक

पुस्तक संस्कृति

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 5 नेहरू भवन, वसंत कुंज, सांस्थानिक क्षेत्र, फेज-2,

नई दिल्ली-110070

ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com

दूरभाष : 011-26707758/26707876

ऑनलाइन शुल्क भेजने का विवरण इस प्रकार है :

For	National Book Trust, India
Bank	Canara Bank
Branch	Vasant Kunj, New Delhi-110070
A/c No.	3159101000299
IFSC Code	CNRB0003159
MICR Code	110015187

शुल्क भेजने के पश्चात् कृपया फोन अथवा पत्र द्वारा सूचना अवश्य दें।

RNI NO. DELHIN / 2016 / 68219

मनोरंजन, ज्ञान और जिज्ञासा की अनूठी दुनिया!

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के कुछ नए प्रकाशन

भारतीय कला के अंतर्संबंध

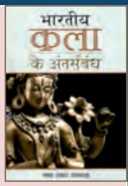

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

इस पुस्तक में कुल नौ निबंध हैं, जिनके माध्यम से भारत के साहित्य और कला में अंतर्संबंध, उसके प्रति लोक दृष्टि, फारसी तथा भारतीय लघुचित्र परंपराओं का विलय, मध्यकालीन चित्र शैलियों को प्रस्तुत किया गया है। यह पुस्तक भारतीय कला व संस्कृति के ज्ञानवर्धन में अति लाभप्रद है।

पृ. 128; रु. 160.00

बंगाल की लोककथाएँ

लाल बिहारी डे

अनुवाद : **सुषमा गुप्ता**

यह पुस्तक अंग्रेजी से हिंदी में अनूदित बंगाल की 22 प्रसिद्ध लोक कथाओं का संकलन है। इन लोक कथाओं के शीर्षक बहुत रोचक हैं; जैसे—शनि की टेढ़ी आँख, भूतनी पत्नी, शादी कराने वाला गीदड़ आदि। ये कथाएँ आज भी प्रासंगिक हैं जो बुराई पर अच्छाई की विजय को रेखांकित करती हैं।

पृ. 214; रु. 230.00

अन्न कहाँ से आता है

सुषमा नैथानी

प्रस्तुत पुस्तक में कृषि की शुरुआत से लेकर जैव-प्रौद्योगिकी से बनी जी.एम. (जेनेटिकली मॉडिफाइड या जीन संवर्धित) फसलों का विवरण दिया गया है। मनुष्य द्वारा 'शिकार और संग्रहण' पर आधारित पारंपरिक जीवनशैली छोड़कर अन्न उपजाने, पारंपरिक कृषि, औपनिवेशिक कृषि, हरित क्रांति, जी. एम. तकनीक आदि विविध विषयों की तथ्यात्मक जानकारी दी गई है।

पृ. 262; रु. 275.00

कश्मीर दर्पण

सकीना अख़्तर

एक तरफ जहाँ धरती का स्वर्ग कहे जाने वाले कश्मीर की प्राकृतिक सुंदरता अलौकिक है वहीं दूसरी तरफ यह धरती कई कश्मीरी संतों की रचनात्मक कृतियों के लिए प्रसिद्ध है। इस पुस्तक में कश्मीरी संतों के साथ-साथ हिंदी प्रदेश से जुड़े संतों के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन भी किया गया है। साथ ही इसमें कश्मीरी लोक संस्कृति, लोक कथाओं तथा सामाजिक जीवन के भी दर्शन होते हैं।

पृ. 186; रु. 200.00

मेघों के देस में

साँवरमल सांगानेरिया

पूर्वोत्तर भारत में स्थित मेघालय की लोक संस्कृति, परंपरा व यहाँ के सामाजिक जीवन को समझने के लिए इस यात्रा-वृत्तांत की रचना की गई है। खासी पहाड़, जयंतिया पहाड़ और गारो पहाड़ खंडों में विभाजित प्रस्तुत पुस्तक पूर्वोत्तर की जनजातियों की भाषा, संस्कृति, जीवनशैली, पहचान और धार्मिक विश्वास की जानकारी मुहैया कराती है।

पृ. 178; रु. 260.00

रुद्रमहालय की कर्पूरमंजरी

रघुवीर चौधरी

गुजरात की महान स्थापत्य कला के प्रतीक मंदिर रुद्रमहालय की कर्पूरमंजरी को केंद्र में रखकर इस उपन्यास की रचना की गई हैं। गद्य के साथ-साथ श्लोकों व पदों का समावेश कर उपन्यास को सुगठित भाषा में पिरोया गया है। यह उपन्यास 13वीं-14वीं सदी से पहले की ऐतिहासिक व सामाजिक पृष्ठभूमि व स्थापत्य कला की विस्तृत जानकारी में महती भूमिका निभाएगा।

पृ. 190; रु. 205.00

साहित्य और समाज की बात

देवशंकर नवीन

आज के बदलते परिवेश में भाषा, साहित्य और समाज में भी काफी परिवर्तन आया है। उक्त चिंतनीय दशा को इस पुस्तक में भाषा, साहित्य और समाज—तीन खंडों और 33 छोटे-बड़े आलेखों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

पृ. 294; रु. 300.00

nbt.india
एकः सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.

फोन : 011-26707761 ● **ई-मेल** : nro.nbt@nic.in

वेबसाइट : www.nbtindia.gov.in